चकमक

अप्रैल, 1994 बाल विज्ञान पत्रिका रु. 5.00

रितेश वर्मा, टिमरनी, म.प्र.

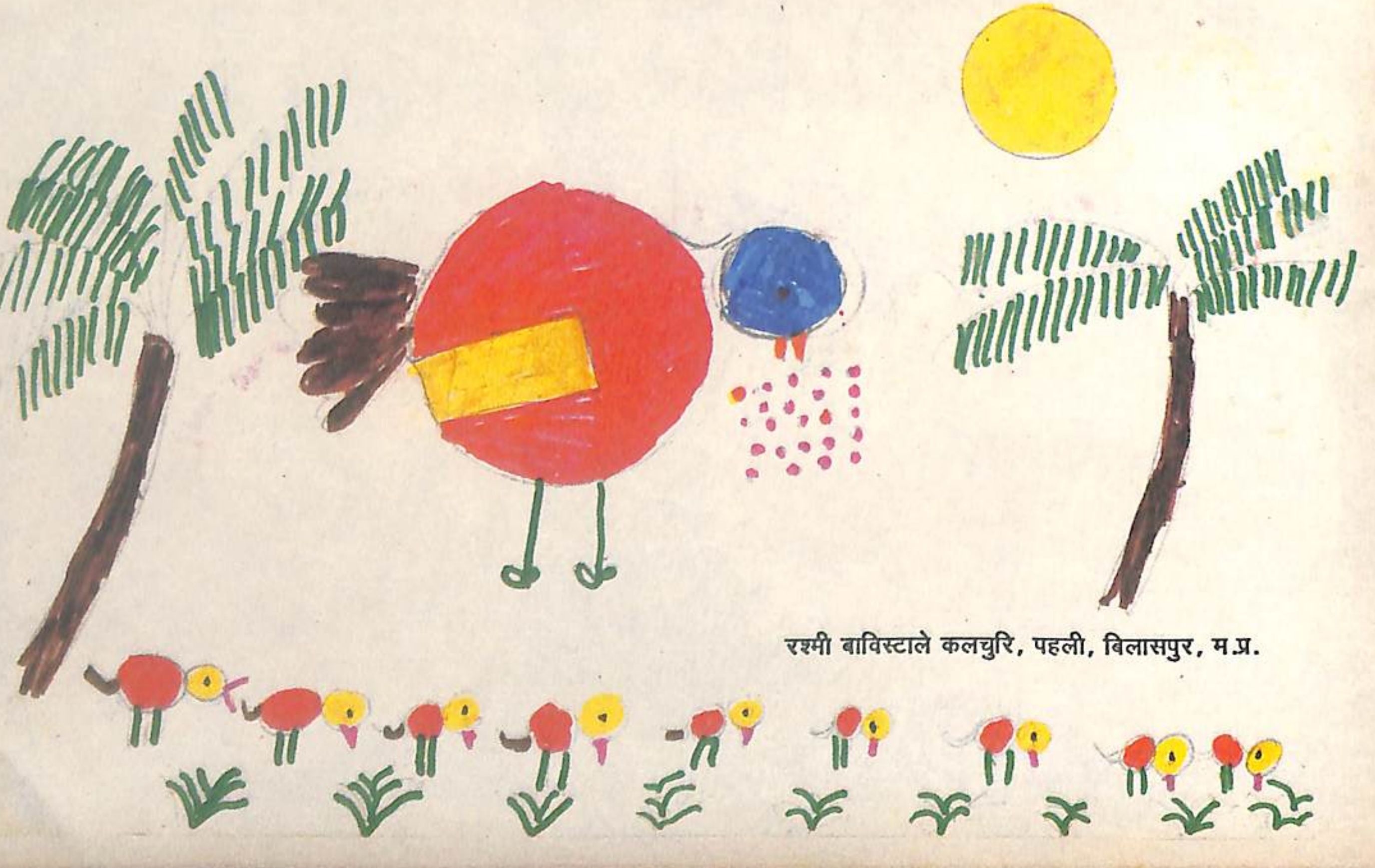

रश्मी बाविस्टाले कलचुरि, पहली, बिलासपुर, म.प्र.

पंकज, लोहार पिपल्या, देवास, म. प्र.

चकमक

मासिक बाल विज्ञान पत्रिका

वर्ष-9 अंक 10 अप्रैल, 1994

संपादक

विनोद रायना

सह-संपादक

राजेश उत्साही

कविता सुरेश

संपादन सहयोग

टुलटुल विश्वास

कला-सज्जा

जया विवेक

उत्पादन/वितरण

कमलसिंह, मनोज निगम

चकमक का चंदा

एक प्रति : पांच रुपए

छमाही : पच्चीस रुपए

वार्षिक : पचास रुपए

डाक ख़र्च मुफ्त

चंदा, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ़्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।

कृपया चेक न भेजें।

कागज़ : यूनिसेफ के सौजन्य से।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता

एकलव्य,

ई-1/208,

अरेरा कॉलोनी,

भोपाल-462016

(म. प्र.)

फ़ोन : 563380

104 वें अंक में . . .

विशेष

9 ❑ असलम का फेफड़ा

कविताएँ

8 ❑ उल्टा-पुल्टा

28 ❑ गोदाम

धारावाहिक

12 ❑ विज्ञान कथा : अनोखा जीव-1

19 ❑ गणित के खेल

36 ❑ मनुष्य महाबली कैसे बना?-8

हर बार की तरह

4 ❑ मेरा पन्ना

17 ❑ खेल कागज़ का

30 ❑ माथा पच्ची

32 ❑ हमारे वृक्ष-24 : कबीट

33 ❑ चित्रकथा : क़िस्सा आफ़न्ती का

और यह भी

2 ❑ पाठक लिखते हैं

23 ❑ चर्चा किताबों की

25 ❑ अपनी प्रयोगशाला

आवरण : विवेक

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

शतक मारने के लिए चकमक परिवार को बधाई। शानदार ढंग से पाली की शुरूआत करके आपने अपने तेवरों का परिचय दिया। परिपक्वता के साथ कलात्मक, सृजनात्मक बनाए रखने के साथ विज्ञान से सजाई-संवारी 'चकमक' ज्ञानवर्धक ही नहीं अपनी विश्वसनीयता की पहचान को उद्घाटित करती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सम्पादकीय टीम अपने अनुभवों से दोहरा शतक मारकर नए इतिहास की रचना करेगी।

❑ **चक्रधर शुक्ल, कानपुर, उ. प्र**

चकमक का 'शताब्दी' अंक या कहें कि शतक अंक पढ़ने को मिला। पढ़कर अच्छा लगा। विशेष इसलिए कि उसमें विज्ञान सम्बंधी सामग्री - लिपि तथा डायनासौर तथा जयंत नार्लीकर का लेख फ्रैड हायल वाला - रोचक तथा उपयोगी लगी। नाटक भी 'शास्त्र...' प्रभावी लगा। आपकी पत्रिका में चित्रों तथा लेखों का संतुलन अच्छा रहता है। कुछ चित्र और अच्छे हो सकते थे जैसे बोबक बकरे का कार्टून।

❑ **विश्व मोहन तिवारी, दिल्ली**

सौवाँ अंक वाकई बढ़िया रहा।

❑ **प्रकाशकांत, अरलावदा, देवास, म. प्र.**

आपका फरवरी, 94 का अंक देखा। आपका प्रयास बहुत सुन्दर है। आप बच्चों को बहुत ही व्यवस्थित ढंग से शिक्षण दे रहे हैं। आपके प्रयास से बच्चों के मन में उत्साह जागा है, बच्चे आगे बढ़ रहे हैं। चित्र बना रहे हैं, पहेली, माथा-पच्ची, तुम भी बनाओ में विशेष रूचि ले रहे हैं।

'मनुष्य महाबली कैसे बना' विशेष पसन्द किया है। 'दुम में भी दम है' अच्छी जानकारी देने वाली रचना है। चित्र व कविताएँ भी विशेष पसन्द की गई हैं। आपका 100वाँ अंक भी सभी दृष्टि से श्रेष्ठ संग्रहणीय अंक है। बच्चे अंक का इन्तजार करते हैं व शौक से पढ़ते ही नहीं, अध्ययन, मनन व प्रयोग भी करते हैं।

❑ **भगवती कुमार परिहार, महिदपुर, म.प्र.**

चकमक बहुत अच्छी पुस्तक है। और जब भी चकमक आती है इसे मैं पूरी पढ़कर ही छोड़ता हूँ। इसके सभी लेख बहुत अच्छे लगते हैं। फरवरी अंक में विशेष 'दुम में भी दम है' बहुत अच्छा लगा। कहानी 'जाशा की दोस्त' भी बहुत अच्छी लगी।

❑ **राजुल मालपानी, आठवीं, पिपरिया, म.प्र.**

वास्तव में चकमक एक बहुत ही अच्छी पत्रिका है। इसके लिए चकमक के सभी सृजनकर्ताओं को बधाई।

❑ **नौजेन्द्र रौतिया, भैंसासुर, बस्तर, म.प्र.**

पाठक लिखते हैं

रूपेश सिंह बघेल, सातवीं, भोपाल, म. प्र.

चकमक पत्रिका बालकों के समग्र बुद्धि विकास के लिये एक अच्छी पत्रिका है।

❑ **प्रधानाध्यापक, राजकीय कन्या प्राथमिक विद्यालय, शेरपुरा, बीकानेर, राजस्थान**

फरवरी, 94 का अंक प्राप्त हुआ। वर्ग पहेली-30 के सर्वशुद्ध हल भेजने वालों में स्वयं का नाम पढ़कर जितनी खुशी मुझे हुई उससे कहीं ज्यादा मेरे विद्यार्थियों को यह जानकर हुई कि इस पत्रिका में उनके मास्टर साहब का नाम छपा है। बस शुरू हो गई छीना झपटी। बड़ी मुश्किल से उन्हें मनाया और छीना झपटी को हाजिरी रजिस्टर में उनके रोल नम्बरों से बुलाकर बारी-बारी से चकमक देकर सुलझाया।

मेरे विद्यार्थियों को यह जानने की इच्छा है कि जिस प्रकार उनके चित्र, कविताएँ तथा लेख 'शिक्षाकर्मी मासिक पत्रिका' में छपते हैं, क्या उसी प्रकार वे चकमक पत्रिका में छपने हेतु चित्र, कविता आदि भेज सकते हैं?

❑ **राजेंद्र सिंह रावत, शिक्षाकर्मी, राजकीय प्राथमिक शाला, भसीना, अजमेर, राजस्थान**

(आप अपने विद्यार्थियों से कहें कि वे अपनी रचनाएँ चकमक के लिए ज़रूर भेजें। –स.)

जनवरी महीने की चकमक बहुत पसन्द आई। समुद्री जन्तुओं के बारे में चित्र सहित जानकारी बहुत रूचिकर और ज्ञानवर्धक थी। अगर सभी चित्र रंगीन होते तो और भी अच्छा रहता।

फरवरी के अंक में गाड़ी बनाना और कहानी 'जाशा की दोस्त' अच्छे लगे।

❑ **प्रवीण नाग, जयपुर, राजस्थान**

चकमक का सौवाँ अंक बहुत ही आकर्षक एवं मनोरम लगा। इस बालपयोगी पत्रिका की यह विशेषता है कि इसकी सभी रचनाएँ अच्छी हैं। बाल कलाकारों की प्रतिभा को उजागर करने में यह सतत प्रयत्नशील है।

❑ **निशा दुबे, होशंगाबाद, म.प्र.**

सौवें अंक पर एक प्रतिक्रिया

प्रिय विनोद जी,

4.2.1994

आपकी 'सौंवी चकमक भी मिली' आपको व चकमक परिवार को बहुत-बहुत बधाई। किसी भी पत्रिका और बालपत्रिका को प्रकाशित करना ही तारे तोड़ना है फिर उसे सुन्दर निकालना और भी कठिन यात्रा है। आप इसमें सफल हुये। यह सौंवा अंक आकर्षक, मनमोहने वाला, मन बहलाने वाला व जानकारी देने वाला है। बाल लिखित रचनायें सरल और अच्छी है।

वयस्क लेखकों की रचनायें निराशाजनक लगीं। सरल नहीं बन पाई। लेखकों ने अपने को प्रसन्न करने के लिये लिखी न कि बाल पाठकों को। ख़ैर जाने दीजिये विनोद जी। शंकर के चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट व एसोसियेशन से जुड़े होने से विवेचन करने की आदत सी हो गई है।

आपका प्रयास जारी रहे व चकमक अनन्त आयु पाये। शुभकामनाओं सहित

विवेचना

गुल्लू गुड़िया के नन्हें गगन में

- *कविता बेहद लम्बी है।*
- *rhyme और अच्छी होनी चाहिये तभी rhythm आयेगा। (idea) विचार छोटे बच्चों के लिये suit करते हैं और length बड़े बच्चों के लिये।*
- *इस विचार को लेकर कविता कहानी 40 व 50 लाइनों से अधिक नहीं होनी चाहिये।*
- *Editing की आवश्यकता है।*

साइकिल की मार

- *प्यारी सुन्दर व ईमानदार रचना है।*

सरकस

- *रचना व विचार सुन्दर है*
- *Rhyme व rhythm की कमी अखरती है।*
- *सरकस आया सरकस आया (और दूसरी लाइन यों होती तो अच्छा था) ढेरों साथ तमाशे लाया"*
- *कविता edit करने के लिये यदि कविता को ज़ोर ज़ोर से पढ़े तो बड़ी सहायता मिलती है। यदि तीन या चार कविता प्रेमी मिल बैठे, जोर से पढ़े और कविता का सम्पादन करें अच्छा रहेगा हम लोग यहां ऐसा ही करते हैं।*

डायनासौर

- *इसमें भी editing की आवश्यकता है। फ़िल्मी सितारों व फ़िल्म का किसी भी रूप में उल्लेख करना ठीक नहीं है। यहां भी आवश्यकता नहीं थी (देखें पहला पैराग्राफ)*
- *Information या सूचना या अकथा या जानकारी देने का रूप जितना pure हो उतनाही अच्छा है। मिलावट' से लेख का मूल्य कम हो जाता है। बाल पाठक अथवा पाठक जब सूचना पाने के लिये लेख पढ़ता है वह केवल जानकारी ही पाना चाहता है। इधर उधर की भटकाने वाली बातें उसे नहीं भाती हैं और वह उन्हें लांघ जाता है। जानकारी देने वाले लेखक लेख में केवल जानकारी दें तो अच्छा है। पाठक उसको पढ़ने के लिये मानसिक रूप से तैयार रहता है। कहानी केवल वही जोड़े जो जानकारी से सम्बन्धित हों।*

डायनासौर बड़ा सुन्दर लेख है। थोड़ी काँट छाँट करके छपता तो और सुन्दर हो जाता।

गांव में मेला

अशोक अंजुम की लिखी 'गांव में मेला' हर तरह से सुन्दर है। Rhyme व rhythm व विचार का अच्छा समन्वय लिये हुये है।

क़िस्सा आफन्ती का

शिवेन्द्र पांडिया की चित्र कथा बड़ी अच्छी लगी। लेख के साथ चित्रों का समन्वय अच्छा है।

वो आई गाड़िया

किशोर उमरेकर की कविता अच्छी है। editing की आवश्यकता है। 'वो' के स्थान पर 'वह' होना चाहिये।

कृपया edit करने में हिन्दी का प्रयोग ठीक भाषा में करें तो अच्छा है। छपी हुई हिंदी बिलकुल सही होनी चाहिये। छपी हुई हिन्दी को ही बच्चे सही समझते हैं।

❑ मनोरमा जफ़ा
सेक्रेटरी-जनरल
एसोसियेशन ऑफ रायटर्स एंड इलस्ट्रेटर फॉर चिल्ड्रन
नेहरू हाऊस, 4 बहादुर शाह जफ़र मार्ग,
नई दिल्ली

(मनोरमा जफ़ा जी का यह पत्र हमने ज्यों का त्यों छापा है।'वो आई गाड़ियाँ,' कविता लाल्टू की है। किशोर उमरेकर ने चित्र बनाए हैं। -सम्पादक)

हमारी पिकनिक

ऋचा उपलवार, बालाघाट, म. प्र.

यह उस भूतकाल की बात है जब दिन था गुरूवार। कालखण्ड था हिन्दी का, बैठी थीं शिक्षिका, साढ़े बारह बज के सेकण्ड की सुई चिल्ला-चिल्ला कर 15 सेकण्ड पूरे होने की चेतावनी दे रही थी। हम शिक्षक के साथ पिकनिक जाने का प्रोग्राम बना रहे थे। लेकिन हमारी पिकनिक स्थगित हो गई। उस दिन जब हम स्कूल से लौट रहे थे तब हमारी हालत बोझ से लदे गधे जैसी थी।

जैसे तैसे हम दूसरे दिन रोते-रोते स्कूल आए और रोते-रोते ही प्रार्थना की। फिर वही चिल्ला चोंट शुरू, 'मैडम पिकनिक ले चलिए न'। मैडम दहाड़कर बोली 'चुप'। फिर भी हमने किसी तरह अपनी पिकनिक तैयार करवा ली।

अगले दिन सुबह इतवार को सभी बालक एवं बालिकाएँ शिक्षक के घर उपस्थित हो गए। सभी बस में बैठ गए। अब हमने हाज़िरी लगाना शुरू कर दी। हाज़िरी लगी और हम चल पड़े। बस में हम नाच-गाना करते हुए चले जा रहे थे। कोई इधर गिरे, कोई उधर गिरे।

पर यह क्या, शायद हम रास्ता भटक गए। पिकनिक स्थल से लगभग सात-आठ कि.मी. आगे पहुँचे। फिर वापस आए। कोई शिक्षक कहता 'आगे चलो' तो कोई कहता 'पीछे चलो'। जाएँ तो आख़िर कहाँ जाएँ। हमने सर्वसम्मति से निर्णय लिया, न हम आगे जाएंगे न पीछे, बीच से एक रास्ता गया था हम वहीं से जाएंगे। अन्त में किसी तरह भूले-

भटके हम उस स्थल पर पहुँचे। खाना बनाया, खाया, मस्ती की और वापिस। लेकिन हम जब बस में बैठ रहे थे हमें याद आ गया कि हमें अभी हाज़िरी भी लगानी है। एक शिक्षिका शायद रह गई थीं, ढूँढा तो पता चला कि वे उस समय आँवले तोड़ रही थीं फिर हमने उन्हें बस में बिठाया और घर वापस आने लगे। हमें हमारी यह पिकनिक हमेशा याद रहेगी।

❑ अतुल पटैल, आठवीं,
पिपरिया, होशंगाबाद, म.प्र.

पहेलियाँ

हरी बेल हरियाली पाती
कुंभकर्ण की पीली छाती।

❑

दो ऐसी बहनें
उजले-काले कपड़े पहने
रोती हैं हँसती हैं
पर कभी न मिल पाती हैं।

❑

❑ सबाना बी, शोभापुर, होशंगाबाद, म.प्र.

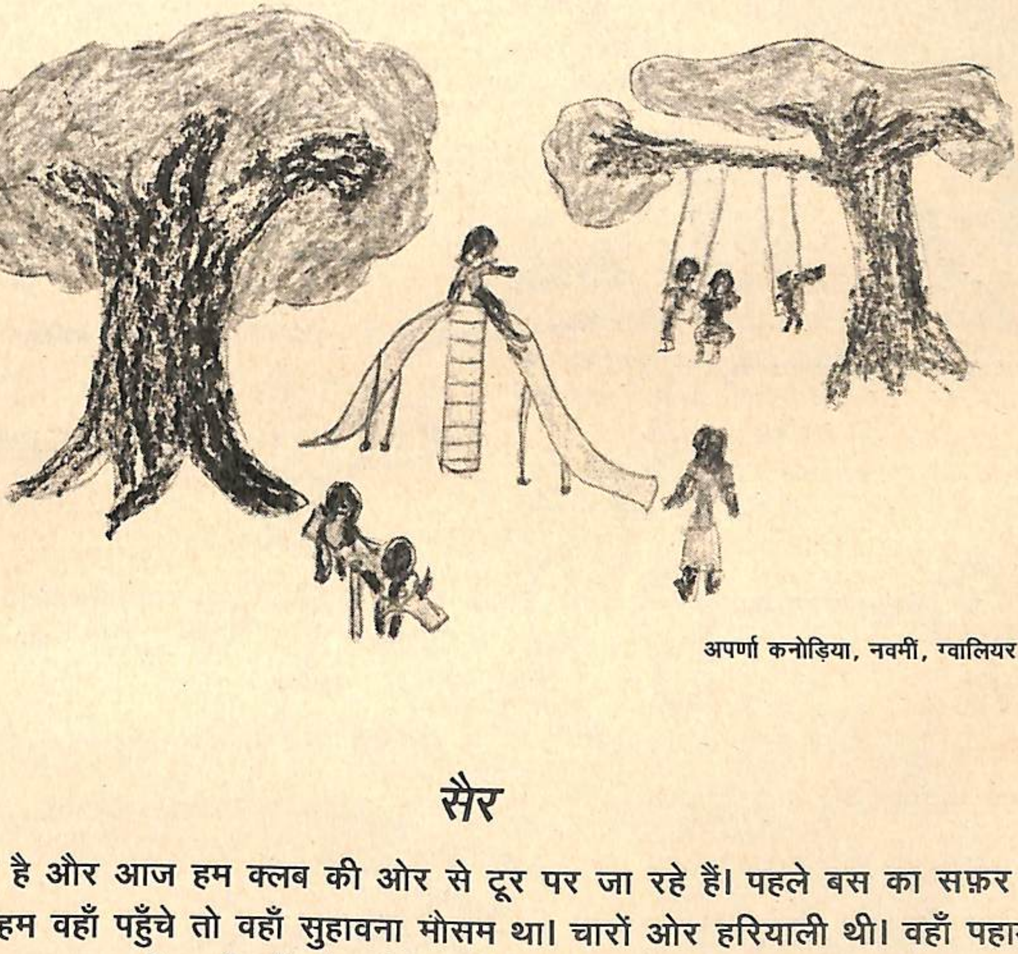

अपर्णा कनोड़िया, नवमीं, ग्वालियर, म. प्र.

सैर

आज छुट्टी है और आज हम क्लब की ओर से टूर पर जा रहे हैं। पहले बस का सफ़र किया और जब हम वहाँ पहुँचे तो वहाँ सुहावना मौसम था। चारों ओर हरियाली थी। वहाँ पहाड़ी भी थी। पहाड़ी बहुत नज़दीक थी। मैं और मेरी छोटी बहन घूमने चले और फिर आकर हम सभी ने खाना खाया। खाना खाकर हम लोग पाँच मिनट पैदल चलकर पार्क में पहुँचे। वहाँ बहुत से झूले थे जो हमने झूले। वापस आकर चाय पी फिर घर की ओर चल दिए।

❑ रश्मि, आठ वर्ष, नया नंगल, रोपड़, पंजाब

जसकीर्ति सिंघई, पहली, शाहगढ़, सागर, म. प्र.

सरोज जैन, छतरपुर, म. प्र.

उमेश बाघमारे, सातवीं, कोण्डागांव, बस्तर, म. प्र.

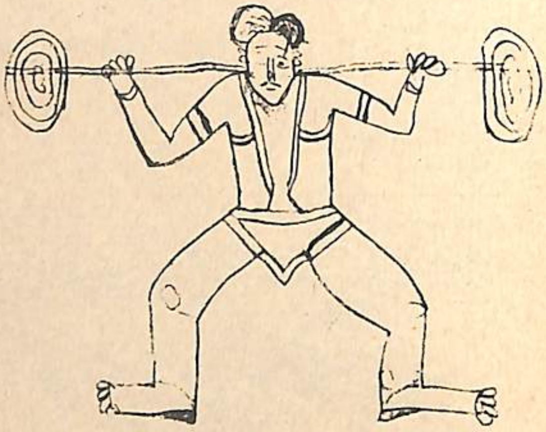

रामसेवक, छठवीं, रानी पिपरिया, पिपरिया. म. प्र.

अटल बिहारी पाण्डेय, चौथी,
हिनौता, पन्ना, म. प्र.

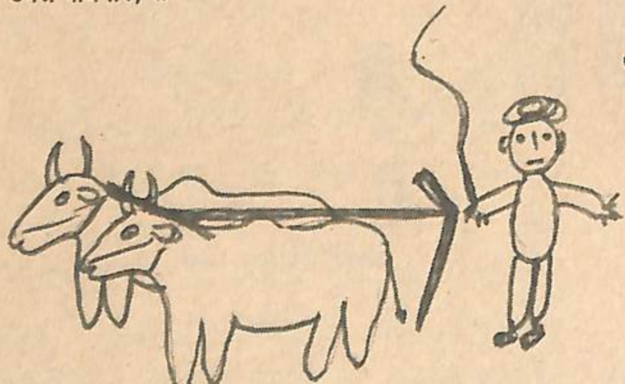

सुभाष श्रीवास्तव, नवमीं, उंचिया,
दतिया, म. प्र.

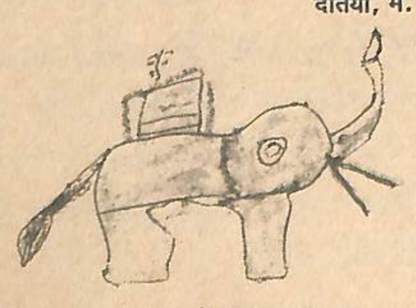

 संतोष यादव, सतवास, देवास, म. प्र.

पंकज पोरवाल, दस वर्ष, बालागुड़ा, मन्दसौर, म. प्र.

हमने मनीआर्डर किया

चकमक का वार्षिक ग्राहक बनने के लिए मुझे पचास रुपए भेजने थे। मैंने पापा जी से कहा कि चिट्ठी के साथ ही लिफ़ाफ़े में रुपए रखकर भेज दूँ। तो पापा ने कहा कि चिट्ठी के साथ रुपए नहीं भेजे जाते हैं, इसके लिए अलग से मनीआर्डर करना पड़ता है। मैं तो कुछ समझी नहीं कि मनीआर्डर क्या होता है।

तो अगले दिन दोपहर को जब मैं स्कूल से लौटकर आई तो पापा मुझे अपने साथ पोस्ट आफ़िस ले गए। वहाँ हमने मनीआर्डर फार्म ख़रीदा - जो दस पैसे में मिला। जब हमने फार्म भरकर खिड़की पर बैठे भैया को दिया तो उसने हमसे 50+3 रुपए माँगे। मैं तो गुल्लक में से एक-एक के सिक्के ले गई थी। मैंने ढेर सारे सिक्के उनके आगे रख दिए।

मनीआर्डर करने वाले भैया सिक्के देखकर चौंक पड़े। बोले, ''मुन्नी ये सिक्के नहीं चलेंगे।' पापा जी मेरे साथ थे। उन्होंने पूछा, 'क्यों भाई!' तो मनीआर्डर करने वाले भैया ने बताया कि, 'भारत सरकार ने मनीआर्डर में सिक्के का चलन बन्द कर दिया है। इससे बहुत परेशानी होती थी।'

मेरे पापा जी को भी यह सब नहीं मालूम था। पता होता तो हम पहले से ही एक-एक के सिक्कों को नोट में बदलवाकर ले जाते।

अच्छा हुआ कि डाक टिकट देने वाले भैया ने हमारी परेशानी समझकर हमसे सिक्के लेकर उसकी जगह हमें काग़ज़ के नोट दे दिए।

तो इस तरह से हमने पहली बार चकमक के लिए मनीआर्डर किया और जाना कि मनीआर्डर क्या होता है और कैसे भेजा जाता है।

❑ **शिप्रा, सात वर्ष, दिल्ली**

(शिप्रा, हमने अपने नज़दीक के पोस्ट आफ़िस में जाकर पता किया, 'कि क्या वास्तव में भारत सरकार ने मनीआर्डर में सिक्कों का चलन बन्द कर दिया है?' यहाँ के पोस्टमास्टर ने हमें बताया कि, 'ऐसा नहीं है, मनीआर्डर में सिक्के भी लिए या दिए जा सकते हैं।'

अब क्यों न तुम एक बार फिर अपने पापा के साथ अपने पोस्ट आफिस में जाकर पोस्ट मास्टर से पता करो कि वहाँ ऐसा नियम क्यों है?जो बातचीत हो वह हमें भी लिखना।)

- सम्पादक

सुबह-सुबह

एक दिन की बात बताऊँ,
एक दिन मैं सो रहा था,
सपनों में मैं खो रहा था,
चुपके से एक चिड़िया आई,
कान में मेरे चीं-चीची गाई।
जल्दी से में जग गया था,
डर के मारे छुप गया था,
मुझको डर था भूत आएगा,
मुझको सूत-सूतकर खाएगा।
सुबह-सुबह की बात थी,
सपना तब मैं देख रहा था,
भूत को देखकर नींद खुली,
असली में अब नींद खुली।

❑ भूपेश होल्कर, इन्दौर, म.प्र.

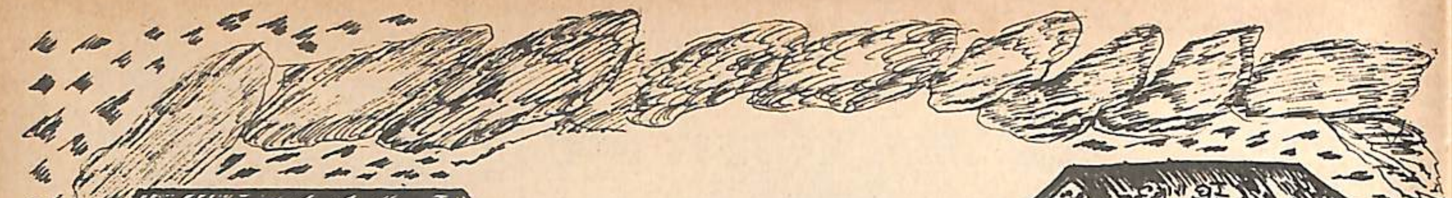

उलटा-पुलटा

चलते-चलते निचली छत से
गिरती जब छिपकली छपाक,
तुरन्त संभल जाती उस क्षण ही
उठ चल देती अपने आप।

ऊपर की डाली से बन्दर
जब आ गिरता है नीचे,
झटपट पकड़ दूसरी डाली
हँसता है आँखें मींचे।

तिलचट्टे, चींटे जब चलते
एकाएक पलट जाते हैं,
झटक हाथ-पैरों को अपने
फिर सीधे हो चल पाते हैं।

चींटी गिरती, मकड़े गिरते
गिरगिट गिरते और संभलते,
गिरने पर वे साहस खोकर
कभी न अपनी आँखें मलते।

गिरने और पिछड़ने पर
जो हिम्मत खोते, पछताते हैं।
धूल झाड़ जो तुरन्त संभलते
वे जीवन में सुख पाते हैं।

❑ भगवती प्रसाद द्विवेदी
चित्र : हृताराम अधिकारी

असलम का फेफड़ा

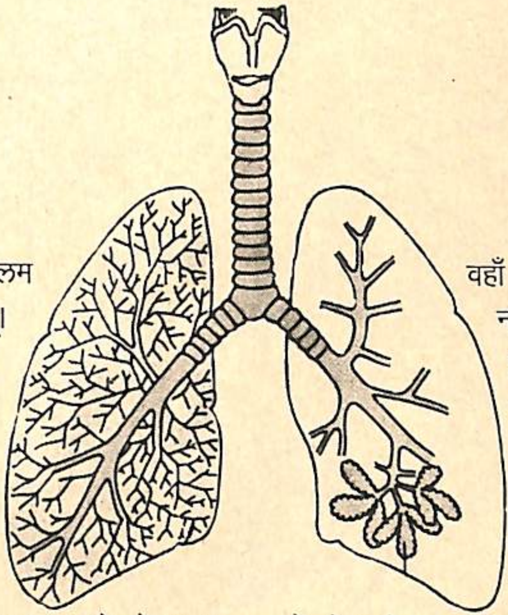

अस्सलाम वुआलैकुम! मैं असलम का दाहिना फेफड़ा बोल रहा हूँ। चौंक गए क्या? दरअसल फेफड़े की कहानी तुम सबको सुनाने का बीड़ा मैंने ही उठाया है क्योंकि मैं अपने बाएँ जोड़ीदार से आकार में थोड़ा बड़ा हूँ। मेरे तीन हिस्से हैं जबकि बाएँ के सिर्फ़ दो ही हैं। असलम शायद मुझे देखकर हैरान हो जाता। उसकी कल्पना में मैं एक खोखला, गुलाबी रंग की, फुटबॉल की थैली (ब्लैडर) जैसी कोई चीज़ हूँ जो उसकी छाती में लटकी हुई है। पर मैं तनिक भी वैसा नहीं हूँ जैसा वो सोचता है। खोखला तो हर्गिज़ नहीं। अगर तुम मुझे आरपार काटो तो अंदर से मैं कुछ-कुछ स्पंज की तरह दिखूँगा। मैं गुलाबी भी नहीं हूँ। एक ज़माने में था, जब असलम एक नन्हा-सा, हँसता-खेलता बच्चा हुआ करता था। क्या दिन थे वो! पर अब तक हज़ारों बीड़ियाँ जो असलम ने फूंकी हैं, और ऊपर से शहर की धुएँ और गन्दगी भरी हवा ने मेरा रंग ही बिगाड़ दिया है। अब मैं एक अजीब-से सलेटी रंग का हो गया हूँ। और बीच-बीच में काले-काले धब्बे भी पड़ गए हैं।

असलम की छाती में तीन सीलबन्द कमरे हैं। एक मेरे लिए, एक बाएँ के लिए और एक दिल के लिए। मैं अपने कमरे में ढीला-सा लटका रहता हूँ। मेरा वज़न लगभग आधा किलोग्राम होता है। मेरे पास कोई माँसपेशियाँ नहीं हैं। इसलिए साँस लेने में मेरी कोई सक्रिय भूमिका नहीं होती। दरअसल मेरे कमरे में बची-खुची जगह में शून्य होता है। यानी वहाँ कुछ भी नहीं होता, हवा भी नहीं। सो जब असलम की छाती साँस लेने से फूलती है तो साथ-साथ मैं भी फूल जाता हूँ। असलम साँस छोड़ता है तो मैं वापस पिचक जाता हूँ। खुदा न ख़ास्ता अगर कभी किसी हादसे से असलम की छाती की दीवार में छेद हो जाए तो मेरे कमरे के शून्य में तत्काल हवा भर जाएगी। तब मैं ढीला पड़ जाऊँगा और तब तक बेकार लटका रहूँगा जब तक छेद न भर जाए और मेरे कमरे में फिर शून्य की स्थिति न बन जाए।

मुझे और क़रीब से देखना चाहोगे? असलम के गले में जो हवा की नली है वो कोई 10 से.मी. नीचे की तरफ जाकर दो हिस्सों में बँट जाती है। एक हिस्सा मेरा और एक बाएँ का। और फिर ये दो नलियाँ ऐसे बँटती हैं जैसे किसी पौधे की झकड़ा जड़ हो, या किसी उल्टे लटकाए हुए पेड़ की डंगालें हों। यकीन मानो जो अन्तिम सबसे छोटी और पतली नलियाँ होती हैं - उनका व्यास एक से.मी. के बीसवें भाग के बराबर होता है। ये सारी नलियाँ सिर्फ़ हवा की आवाजाही के लिए गलियारों का काम करती हैं। असली काम करने वाले अंग तो छोटी-छोटी हवा की वो थैलियाँ हैं जो बिलकुल अंगूर के गुच्छों की तरह दिखती हैं - पर आकार में उनसे भी छोटी होती हैं।

ऐसी हरेक थैली में खून की बारीक नलियों का जाल बिछा रहता है। इन नलियों में दिल (जो कि एक पम्प की तरह काम करता है) लगातार ख़ून भेजता रहता है। इन नलियों में एक पतली झिल्ली

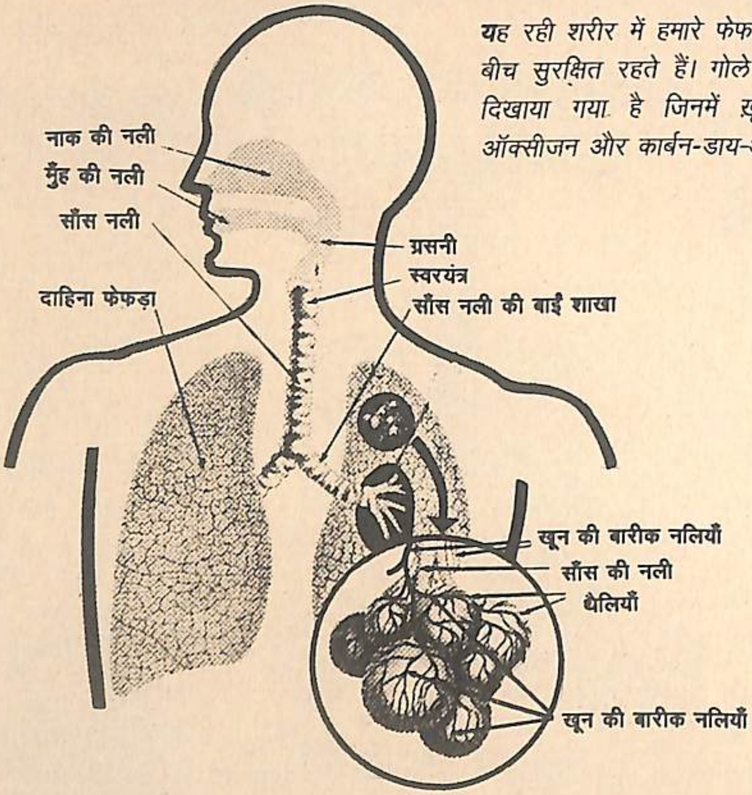

यह रही शरीर में हमारे फेफड़ों की जगह। फेफड़े पसलियों के बीच सुरक्षित रहते हैं। गोले में उन थैलियों को बड़ा करके दिखाया गया है जिनमें ख़ून और ताज़ी हवा के बीच ऑक्सीजन और कार्बन-डाय-आक्साइड का लेन देन होता है।

होती है। झिल्ली के एक तरफ ख़ून बहता रहता है और दूसरी तरफ साँस के द्वारा अन्दर पहुँची ताज़ी हवा होती है। इस ताज़ी हवा से जब ऑक्सीजन झिल्ली को पारकर ख़ून के सम्पर्क में आती है तो खून उसे सोख लेता है। इसके साथ ही साथ खून से कार्बन-डाइ-आक्साइड निकलकर, झिल्ली पार करके हवा में मिल जाती है। यह क्रिया लगातार चलती रहती है। चित्र देखो।

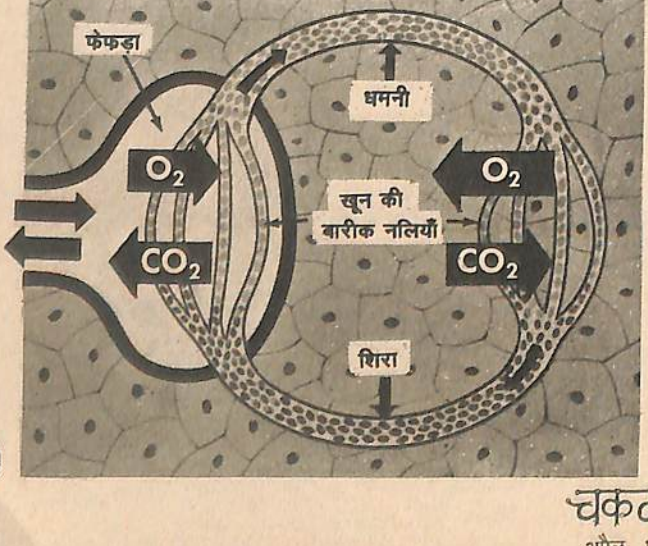

दरअसल असलम और तुम सबके शरीर के जो ज़्यादा महत्वपूर्ण अंग हैं - जैसे दिल - वो ऑटोमैटिक ही काम करते हैं। मैं भी कुछ हद तक आटोमैटिक हूँ। पर मुझ पर कई बार असलम का ज़ोर भी चलता है। बचपन में असलम बेहद शरारती बच्चों में से था। कई बार वो ज़िद पर अड़कर या अपनी अम्मी से लड़कर अपनी साँस रोक लेता था। ज़ुल्म मुझ पर ढाता था, पर ख़ुद नीला पड़ने लगता था। उसकी अम्मी का तो मारे घबराहट के बुरा हाल हो जाता। पर मैं तुम लोगों को एक राज़ की बात बता दूँ? इसमें घबराने की कोई बात ही नहीं थी। असलम चाहता या नहीं, उसे कोई बहुत हानि होने से पहले ही साँस लेने का काम मैं ख़ुद सम्हाल लेता - ऑटोमैटिक।

बिस्तर पर शान्त लेटे हुए असलम को हर मिनट सिर्फ़ चार लीटर हवा की ज़रूरत होती है। बैठे हुए यह ज़रूरत बढ़कर आठ लीटर की हो जाती है, चलते हुए बारह लीटर की और दौड़ते हुए 25 लीटर की। चूँकि असलम एक दफ़्तर में बाबू है और अधिकतर समय मेज़-कुर्सी पर बैठकर ही काम

करता है इसलिए उसे ज़्यादा हवा की ज़रूरत नहीं पड़ती। वह औसतन एक मिनट में 16 बार साँस लेता है। हर साँस में आधा लीटर हवा। पर इतने से मेरा थोड़ा-सा हिस्सा ही भरता है। मैं इससे आठ गुना अधिक हवा अपने अन्दर भर सकता हूँ! और हाँ, जो आधा लीटर हवा असलम हर साँस में अन्दर लेता है वह भी पूरी मेरे काम नहीं आती। उसका एक-तिहाई तो हवा की नली में इधर-उधर तफरी करके ही बाहर निकल जाता है।

पता है मुझे कैसी हवा अच्छी लगती है? हल्की गर्म, गुनगुनी-सी और गीलापन लिए हुए। असलम की आँखों को गीला कर देने वाली आँसू की ग्रंथियाँ और नाक और गले की अन्य नमी पैदा करने वाली ग्रंथियाँ बाहर की हवा को गीला करने का काम करती हैं। और हवा के रास्ते में पड़ने वाली ख़ून की नलियाँ हवा को गर्म करने का काम करती हैं।

जो मुझे परेशान कर दें, बीमार कर दें ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं। हर रोज़ असलम कई तरह के बैक्टीरिया और वायरस हवा के साथ अन्दर लेता है। अधिकतर को तो नाक और गले में ही ख़त्म कर दिया जाता है। परन्तु कुछ फिर भी बचकर अन्दर आ जाते हैं और इनसे यहाँ निपटना पड़ता है। गन्दी हवा, मेरी सबसे बड़ी दुश्मन है। पर उसको साफ़ करने का इन्तज़ाम भी है मेरे पास। शुरूआत नाक के बालों से होती है। ये बाल हवा में मौजूद बड़े धूल कणों आदि को अन्दर जाने से रोक देते हैं। फिर नाक की श्लेष्मा की बारी। यह भी धूल के बारीक़ कणों को रोकती है। पर सफ़ाई का असली काम तो हवा की नली में लगे लाखों बारीक़ बाल करते हैं। ये एक सेकण्ड में बारह बार आगे-पीछे हिलते हैं - खेत में हवा के झोंके से हिल रही खड़ी फसल की तरह। पर यह प्रक्रिया बीड़ी या सिगरेट के एक कश से या अन्दर गई गन्दी हवा के एक झोंके से रुक-सी जाती है। अगर यह सिलसिला लगातार चलता रहे तो ये बाल धीरे-धीरे निष्क्रिय हो सकते हैं। और फिर कभी सक्रिय नहीं होते।

असलम तीस साल से बीड़ी पी रहा है। अब तो उसकी हवा की नली के लगभग सारे बाल निष्क्रिय हो चुके हैं। अगर कभी बहुत सारा थूक या

(शेष पृष्ठ 27 पर)

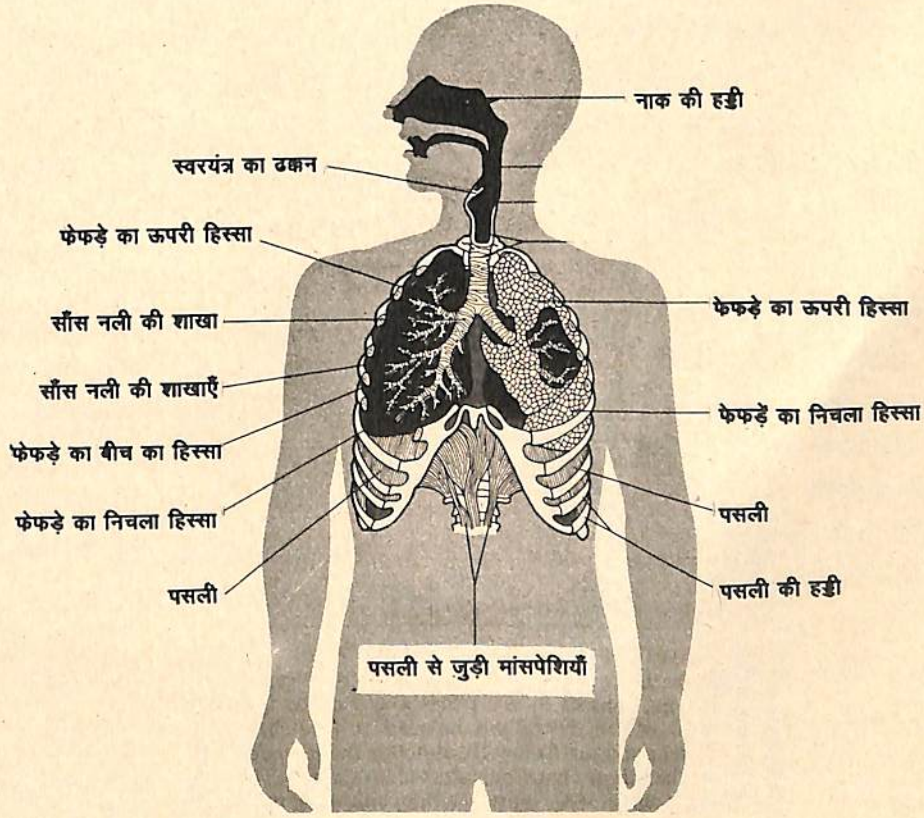

अनोखा जीव

चकमक के जून, 92 के अंक में हमने सत्यजित राय को श्रद्धांजलि देते हुए यह वादा किया था कि बच्चों के लिए लिखे उनके साहित्य को हम चकमक के पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश करेंगे । उस वादे को पूरा करने की शुरुआत इस अंक से कर रहे हैं ।

वैसे तो सत्यजीत राय ने बच्चों के लिए लेख, कहानी, कविताएँ, रहस्य-रोमांच के उपन्यास आदि सभी कुछ लिखा है। पर उनका खास योगदान जिस क्षेत्र में रहा वह है विज्ञान गल्प की रचना । उन्होंने प्रोफेसर त्रिलोकेश्वर शंकु नाम के एक पात्र की कल्पना की, जो एक अद्भुत मेधावी लेकिन गरीब देश के गरीब वैज्ञानिक हैं। प्रो. शंकु कम साधनों के बावजूद अपनी प्रतिभा और मेहनत से कई अनोखे वैज्ञानिक उपकरण ईजाद करते हैं । कई खोज करते हैं। पर अक्सर यह सब करते -करते वे किसी न किसी रोमांचकारी कहानी का हिस्सा भी बन जाते हैं। प्रो. शंकु की ऐसी कई कहानियाँ हैं ।

इनमें से एक कहानी 'अनोखा जीव' का धारावाहिक प्रकाशन हम इस अंक से शुरू कर रहे हैं । यह कहानी डायरी शैली में लिखी गई है। ऐसी ही दो अन्य कहानियों के हिन्दी अनुवाद किताब रूप में प्रकाशित हुए हैं, जिनकी समीक्षा तुम इसी अंक में पढ़ोगे।

- सम्पादक

10 मार्च

हमारी सारी मेहनत बेकार गई। इस तरह की घटना मेरे साथ पहले कभी नहीं हुई। बस इसी बात की थोड़ी-सी तसल्ली है कि यह केवल मेरे अकेले का शोधकार्य नहीं है। कोई और भी मेरे साथ है। हमबोल्ट भी दुखी हो गया था। पर ऐसे तो काम नहीं चलेगा। कल हमें फिर काम में लगना होगा।

11 मार्च

आज भी कोई अच्छे नतीजे नहीं निकले। अगर कुछ निकलता तो सारी दुनिया में तहलका मच जाता। पर अब लगता है कि ऐसा कुछ हमारे नसीब में नहीं। मैं आमतौर पर अपनी निराशा ज़ाहिर नहीं करता हूँ। पर हमबोल्ट इतना संयमी नहीं है। आज प्रयोगशाला से बाहर आते-आते उसने अकारण ही अपने कुत्ते को ज़ोर से लात मार दी। मैं हतप्रभ रह गया था क्योंकि हमबोल्ट के व्यक्तित्व के इस पहलू से मैं परिचित नहीं था। पर उसका गुस्सा जल्दी ही काफ़ूर हो गया और उसने कुत्ते - नेपोलियन - को अपने पास बुलाकर उसका माथा सहलाया। नेपोलियन ने खुशी से पूँछ हिलाना शुरू कर दिया।

आज बहुत ठण्ड रही और सुबह से ही तेज़ हवा चलती रही। ज़मीन पूरी तरह बर्फ़ से ढक गई है। मैं तो सारा दिन बड़े कमरे में जल रहे अलाव के पास बैठकर बिताना चाहता हूँ। पर मुझे मालूम है कि हमबोल्ट फिर मुझसे महाशतरंज खेलने को कहेगा। महाशतरंज यानी शतरंज का भी परदादा!

यह हमबोल्ट के ही दिमाग़ की उपज है। इसमें शतरंज की बिसात का आकार दुगना हो जाता है, 16 की जगह 32 गोटी होती हैं और गोटियों की चालें तो आम शतरंज से कई-कई गुना पेचीदा होती हैं। पर मैंने कोई तीन घंटे में ही खेल सीख लिया था। हाँ, पहले दिन मैं ज़रूर हार गया था पर परसों से मैं लगातार हमबोल्ट की शह-मात करता आया हूँ! पर मैंने सोच लिया है कि अगर आज हम फिर खेले तो मैं जानकर हार जाऊँगा। इतने निराशाजनक दिन के अन्त में हमबोल्ट को जिताना ही ठीक रहेगा।

12 मार्च

आज पहली बार थोड़ी उम्मीद बंधी है। इतिहास की यह पहली घटना होगी कि इन्सान ने जीवन बनाया। आज सुपर-सूक्ष्मदर्शी की मदद से हमने प्रयोग के फ्लास्क में एक ऐसी चीज़ देखी जो पहले कभी नहीं दिखी है। यह एक परमाणु के आकार की कोई कोशिका जैसी चीज़ है। हमबोल्ट सुपर-सूक्ष्मदर्शी से बहुत देर तक उसे देखता रहा और फिर सुपर-सूक्ष्मदर्शी मैंने लिया। मेरे देखते ही देखते वह चीज मेरी आँखों के सामने से ओझल हो गई। बिल्कुल गायब। उसकी हरकतें देखकर तो मैं यह कहने से अपने आप को नहीं रोकूँगा कि यह कोई जीव ही था। फिर इस बात पर भी कोई शक नहीं कि यह हमारे शोध का ही परिणाम है। हमबोल्ट की खुशी के तो क्या कहने। जैसे ही मैंने अपनी आँखें उस उपकरण से हटाई उसने मेरी पीठ पर वो धौल जमाई कि पीठ अब भी दर्द कर रही है।

पर चिन्ता की बात यह है कि अगर हम जीवन का निर्माण कर भी पाएँ, तो क्या वह सिर्फ़ कुछ सेकण्ड ही जीवित रह पाएगा? अगर ऐसा हो, तो फिर उसका फ़ायदा क्या? हम औरों को इसके दर्शन कैसे करवाएँगे? यूरोपीय वैज्ञानिक हमारी इस उपलब्धि को मानेंगे क्यों भला?

ख़ैर इन सब बातों के बारे में अभी न सोचना ही अच्छा है। मैं पूरे विश्वास के साथ सिर्फ़ इतना ही कहूँगा कि आज यहाँ, इस प्रयोगशाला में जो कुछ हुआ वह कभी दुनिया की किसी प्रयोगशाला में नहीं होता।

जीवन का निर्माण करने के लिए हमने जो तरीक़ा अपनाया है वही एकमात्र सम्भव तरीक़ा हो सकता है। वैज्ञानिक यह तो अब पता लगा ही चुके हैं कि करोड़ों साल पहले जब पृथ्वी पर पहली बार जीवन या जीवित कोशिका दिखाई दी, तब परिस्थितियाँ कैसी थीं। परिस्थितियाँ बहुत भयंकर थीं। ज़मीन का तो कोई नामोनिशान नहीं था। चारों ओर पानी ही पानी था। और पृथ्वी का तापमान इतना ज़्यादा था कि सारा पानी लगातार खौलता रहता था। आज पृथ्वी पर जो वातावरण है - ओज़ोन, ऑक्सीजन की परतें जो इन्सान को ज़िन्दा रहने में मदद करती हैं - ये सब उन दिनों नहीं थीं। वातावरण में कुछ गैसें थीं जो विद्युत को अपने में से गुज़र जाने देती थीं। आए दिन आँधी-तूफान के साथ बिजली गिरती रहती थी। ऐसी अवस्थाओं में पहले पहल जीवन का विकास हुआ।

हमने अपनी प्रयोगशाला में भी प्रयोग वाले फ़्लास्क में कृत्रिम रूप से ऐसा ही एक वातावरण बनाया है। मुझे लगता है कि हम कुछ दिन और यह वातावरण बनाए रख सकेंगे और प्रयोग जारी रखेंगे। अगर हम ऐसा करें तो हमारे फ़्लास्क में ही जीवन का निर्माण होगा। पहली बार इन्सान जीवन बनाएगा।

मुझे यह भी कहीं लिख लेना चाहिए कि मैं इस शोधकार्य में हमबोल्ट के साथ कैसे हो लिया। मैंने जर्मनी के ब्रेमेन शहर में हुए एक विज्ञान सम्मेलन में कृत्रिम जीवन के निर्माण पर एक पर्चा पढ़ा था। हमबोल्ट भी उस सम्मेलन में था। मैंने इस मशहूर बायोकेमिस्ट (जैव-रसायनज्ञ) - हमबोल्ट - के पर्चे तो पढ़े थे पर इससे मिला कभी नहीं था। मेरे पर्चा पढ़ने के बाद इसने ख़ुद आकर मुझसे मुलाकात की। वह लगभग मेरी ही उम्र का रहा होगा परन्तु मुझसे कहीं लम्बा और बिल्कुल गंजा। उसके चेहरे पर दाढ़ी - मूँछ का भी नामोनिशान नहीं था। फिर मैंने देखा कि उसकी भौहों और पलकों में भी बाल नहीं थे। मुझे बिन बालों वाले एक आदमी का ख़्याल आया। पर मैंने हाथ मिलाते हुए गौर किया कि उसके हाथों पर सुनहरे बाल थे।

उस सम्मेलन में सत्र के अन्त में एक बड़े हॉल में सभी के लिए चाय का आयोजन था।

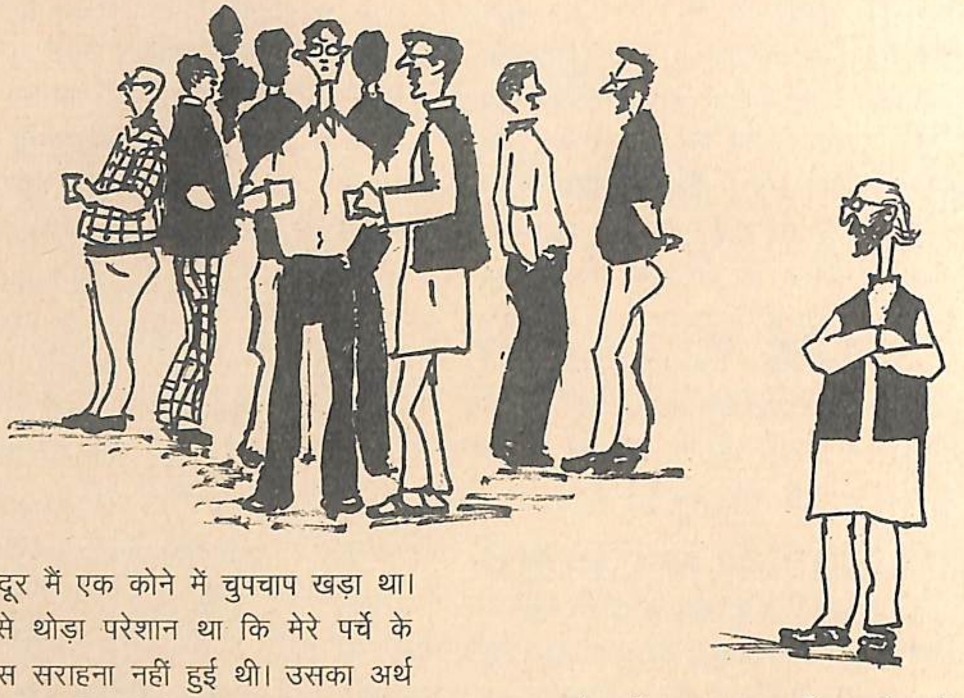

भीड़-भाड़ से दूर मैं एक कोने में चुपचाप खड़ा था। मैं इस बात से थोड़ा परेशान था कि मेरे पर्चे के बाद कोई ख़ास सराहना नहीं हुई थी। उसका अर्थ यह निकलता था कि लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं था। यानी लोगों को कृत्रिम रूप से बनाए गए जीवन की सम्भावना से भी इन्कार था। इसलिए सौजन्यवश कुछ लोगों ने सराहना ज़रूर की थी पर कोई इस पर मुझसे बात करने नहीं आया। पर तभी प्रो. हमबोल्ट मुस्कुराता हुआ मेरी ओर आया। उसके हाथ में दो कप थे। ज़ाहिर है एक मेरे लिए था। मैंने उससे कप लेकर उसका शुक्रिया अदा किया। फिर हम जर्मन में ही बात करने लगे। उसके पहले वाक्य ने मुझे हैरत में डाल दिया, "अब मुझे अपना पर्चा पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं।"

"क्या मतलब?" मैंने पूछा।

"हम दोनों ने बिल्कुल एक-सी बातें लिखी हैं।"

मैंने खुश होकर जवाब दिया, "हर्ज़ ही क्या है। चूँकि मेरे अकेले की बात पर तो ये यकीन करने से रहे, शायद हम दोनों के एक ही बात कहने पर ये उस बात को कुछ गंभीरता से लें।"

हमबोल्ट ने हल्के-से मुस्कुराते हुए धीमी आवाज़ में कहा, "इन लोगों को समझाने की कोशिश करना बेकार है। दलीलों से भी काम नहीं चलेगा। इन्हें तो निष्कर्ष चाहिए, ठोस निष्कर्ष। क्या तुमने अपनी बात को परखा है?"

मुझे उसे बताना पड़ा कि इतने जटिल प्रयोग मेरी गिरिडीह की छोटी-सी प्रयोगशाला में असम्भव थे।

"उसकी चिन्ता मत कीजिए," हमबोल्ट ने कहा, "आप मेरी प्रयोगशाला में आकर काम करिए।"

"कहाँ?" मैंने पूछा। मुझे तो पता ही नहीं था कि ये साहब रहते कहाँ थे।

"स्विट्ज़रलैण्ड।" उसने कहा, "मैं सेंट गैलेन में रहता हूँ। और मेरी जैसी प्रयोगशाला आपको पूरे यूरोप में नहीं मिलेगी।"

मैं मना कैसे करता। तुरन्त हामी भर दी। और आज से एक हफ़्ता पहले (5 मार्च को) मैं सेंट गैलन आ पहुँचा। यह शहर भी स्विट्ज़रलैण्ड के किसी भी शहर की तरह सुन्दर है। पहले दिन तो मैं शहर में घूमता रहा। पर दूसरे दिन से ही हमने काम शुरू कर दिया। हमबोल्ट की प्रयोगशाला वाक़ई अद्‌भुत है। इस तरह का प्रयोग और कहीं सम्भव ही नहीं था। बस, अब यह प्रयोग सफल हो जाए....वैसे आज के अच्छे परिणामों का श्रेय तो बहुत हद तक मुझे ही जाता है। यह मेरा ही आइडिया था कि फ़्लास्क के घोल में विद्युत किरणें भेजी जानी चाहिए। मुझे लगता है कि इसी वजह से आज कुछ

पलों के लिए परमाण्विक जीव दिखाई दिया था। कल मैं कुछ और विद्युत किरणें भेजकर देखूँगा कि क्या होता है।

अब लिखना बन्द करना होगा। हमबोल्ट का नौकर, मैक्स बुलाने आया है कि हमबोल्ट महाशतरंज की बिसात सजाकर मेरी राह देख रहा है।

14 मार्च

कल मैं डायरी नहीं लिख पाया। लिखने का मन नहीं था। नहीं, मैं परेशान नहीं था... खुशी के चरमबिन्दु पर था मैं। अभी भी मुझे जैसे सारा अनुभव अविश्वसनीय लग रहा है। घड़ी रात के ढाई बजा रही है, पर मैं पूरी तरह से जाग रहा हूँ। मेरा मन बार-बार हमबोल्ट की प्रयोगशाला में रखे फ़्लास्क के अन्दर के अद्भुत जीव की ओर लौट जाता है। हमारे ऐतिहासिक प्रयोग का परिणाम वह जीव।

कल शाम, ठीक-ठीक बताऊँ तो छह बजकर तैंतीस मिनट पर, इस जीव का जन्म हुआ। मुझे पक्का विश्वास है कि यह विद्युत तरंगें बढ़ा देने के मेरे फ़ैसले का ही नतीजा है। फिर भी, मैंने हमबोल्ट के सामने डींग नहीं हाँकी, इसलिए वह भी खुश है। उसे शायद लगता हो कि हम दोनों का योगदान बराबर है। वह ऐसा सोचता भी रहे तो मुझे कोई शिकवा नहीं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारा शोध सफल रहा।

कल जीव का जन्म ही एकमात्र चौंकाने वाली बात नहीं थी। जन्म के समय जो कुछ हुआ वो भी बहुत अजीब और अस्वाभाविक था। हम दोनों लगातार पाँच घण्टों से फ़्लास्क को घूरते हुए बैठे थे। बर्फ़ गिर रही थी। हमबोल्ट का कुत्ता 'नेपोलियन' प्रयोगशाला में ही फर्श पर बैठा था और मैक्स बस हमारे लिए कॉफी लाया ही था। इतने में बादलों के गरजने और बिजली गिरने जैसी तेज़ आवाज़ हुई। हम दोनों चौंके। बाहर आसमान साफ़ था और धूप चमक रही थी। उस आवाज़ के साथ ही कुछ पलों तक हमने भूकम्प के झटके भी महसूस किए थे। झटके इतने तेज़ थे कि खिड़की के काँच और मेज़ पर रखी शीशी-बोतल, सब झनझना उठे। हम दोनों लगभग मेज़ पर गिर ही पड़े।

किसी तरह अपने आप को सम्हालकर हम लोगों ने फ़्लास्क की ओर देखा तो देखते ही रह गए। वह लगभग आधा भरा था पानी से और अब उस पानी में लहरें उठ रही थीं। जैसे फ़्लास्क का पानी कोई छोटा-सा महासागर हो।

फिर हमने देखा कि पानी की सतह के कोई

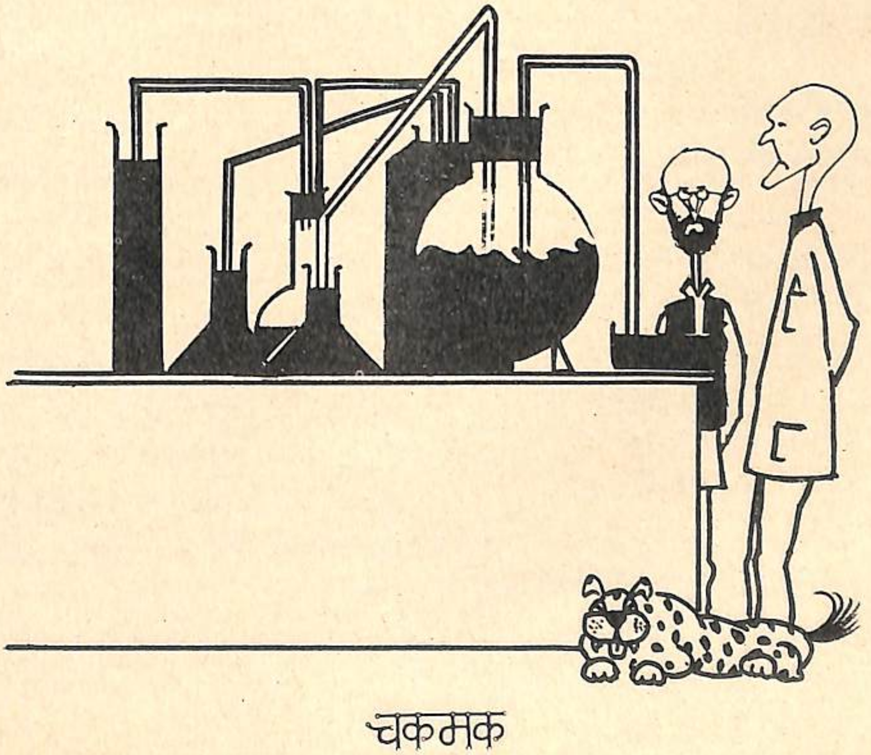

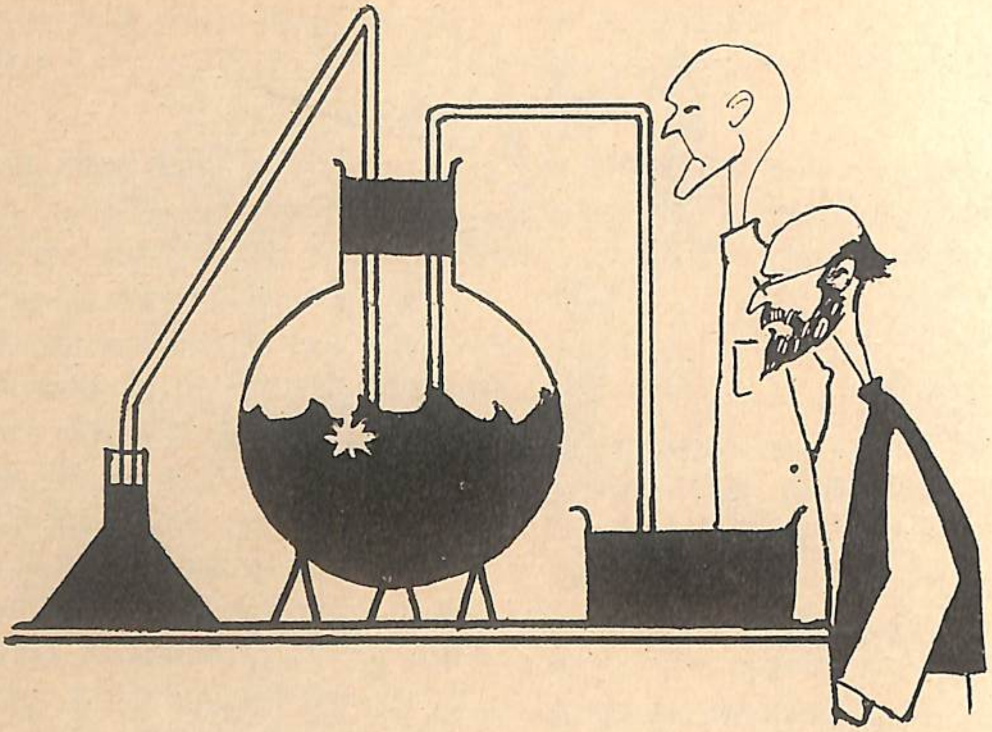

एक इंच नीचे कुछ तैर रहा था। वह बमुश्किल खुली आँखों से दिखता था परन्तु परमाणु के आकार से काफी बड़ा था। यह तय था कि पानी में तरंगें इसी जीव के चलने-फिरने से पैदा हो रही थीं।

''बत्ती बुझा दो।'' हमबोल्ट अचानक चिल्लाया और मैं पहले चौंका। फिर बत्ती बुझाकर मैंने एक अविश्वसनीय चीज़ देखी। इस जीव की अपनी ही एक रोशनी थी। पानी में रोशनी आड़ी-तिरछी लकीरें बना रही थी और हमें उसके चलने की दिशा बताती थी। हम दोनों फ्लास्क को घूरते हुए मंत्रमुग्ध से खड़े रहे।

पता नहीं कितनी देर हम वैसे ही खड़े थे। अचानक लाइट जलने से मैं होश में आया। हमबोल्ट लाइट जलाकर सोफे पर बैठ गया। वो अब भी बहुत उत्साहित था और बार-बार हाथों को मल रहा था। मैं मेज़ के पास की कुर्सी पर बैठ गया और बोला, ''क्या हमें अब इस घटना के बारे में विज्ञान जगत को बताना नहीं चाहिए?''

हमबोल्ट ने कोई जवाब नहीं दिया। वह बस हाथ मलता रहा। मैंने सोचा कि हमारी सफलता ने शायद उसे इतना प्रभावित कर दिया था कि वह थोड़ी देर तक कुछ भी ठीक से सोच पाने में असमर्थ था। फिर मैंने ही थोड़ी देर बाद कहा, ''हमें अभी कुछ दिनों तक तो इसकी देखभाल करनी होगी ताकि यह ज़िन्दा रह सके।

हमबोल्ट ने कई बार सहमति में सिर हिलाया और एक अजीब-सी, धुंधली-सी आवाज़ में कहा, ''हाँ, हाँ, ...हाँ...''

तबसे उसने शतरंज का भी कोई ज़िक्र नहीं किया है। कल रात खाना खाते समय भी वह कुछ नहीं बोला। अब भी वह खोया-खोया सा है। क्या पता किस सोच-विचार में उलझा है वो।

आज हम दोनों ने ही बहुत सारा वक़्त प्रयोगशाला में गुज़ारा। हमने दिन में सारी खिड़कियाँ बन्द कर ली थीं ताकि कमरे में अन्धेरा रहे। कमरे में घुसते ही हमारी आँखें सीधे फ़्लास्क में तैरती नीली आभा वाले जीव पर पड़ती थीं। रोशनी की इस जीवित बूँद को हम क्या नाम दें? अभी तक हम कुछ तय नहीं कर पाए हैं।

(अगले अंक में जारी)

अंग्रेज़ी से अनुवाद : टुलटुल विश्वास

सभी चित्र : देबाशीष पाल

तारे तरह-तरह के

दोस्त को उपहार देना हो तो ढेर सारा समय क्या दें..क्या न दें..सोचने में लग जाता है। और जब यह तय हो जाए तो उपहार कैसे दें, यह भी एक समस्या सामने होती है। उपहार डिब्बे में दें या कागज में यूँ ही लपेटकर दे दिया जाए? ख़ैर..अब यह तो उपहार देने वाले की मर्ज़ी पर निर्भर करता है। पर हाँ, हम यह सुझाव देगें कि अगर उसे बाहर से सजा दिया जाए तो उपहार में 'चार चाँद' लग जाएंगे।

तो आओ झटपट कुछ तारे बना लो।

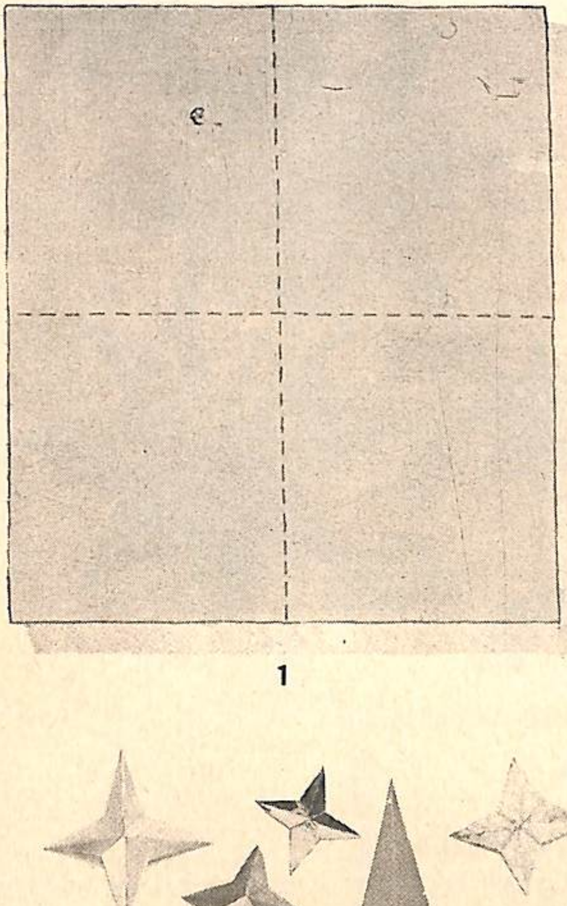

1

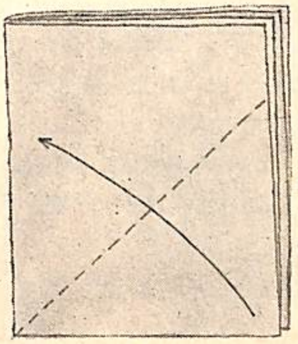

2

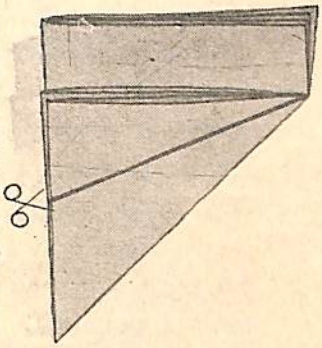

3

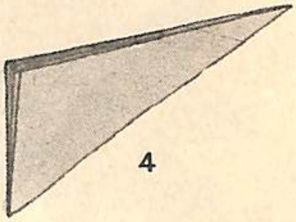

4

चार कोने वाला तारा

1. एक चौकोर काग़ज़ लो। टूटी रेखाओं पर से मोड़कर रूमाल की तरह तह कर लो।
2. इस तरह। चित्र को ध्यान से देखो। काग़ज़ को चित्र में दिखाई दे रही टूटी रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ो।
3. अब इस चित्र में कैंची के सामने दिखाई दे रही रेखा पर से निचले हिस्से को काट लो।
4. ऐसी आकृति मिलेगी। इसे खोलोगे तो मिलेगा चार कोने वाला एक तारा।

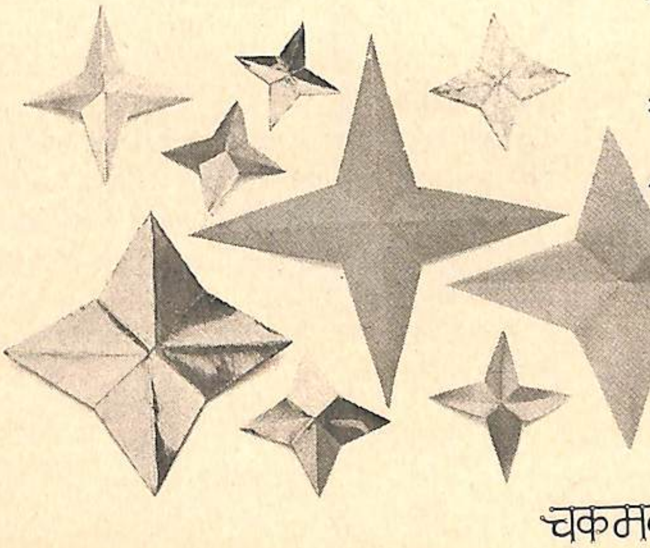

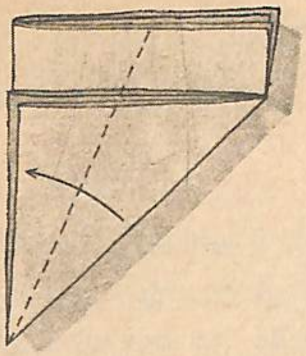

1

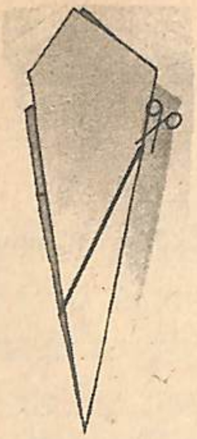

2

3

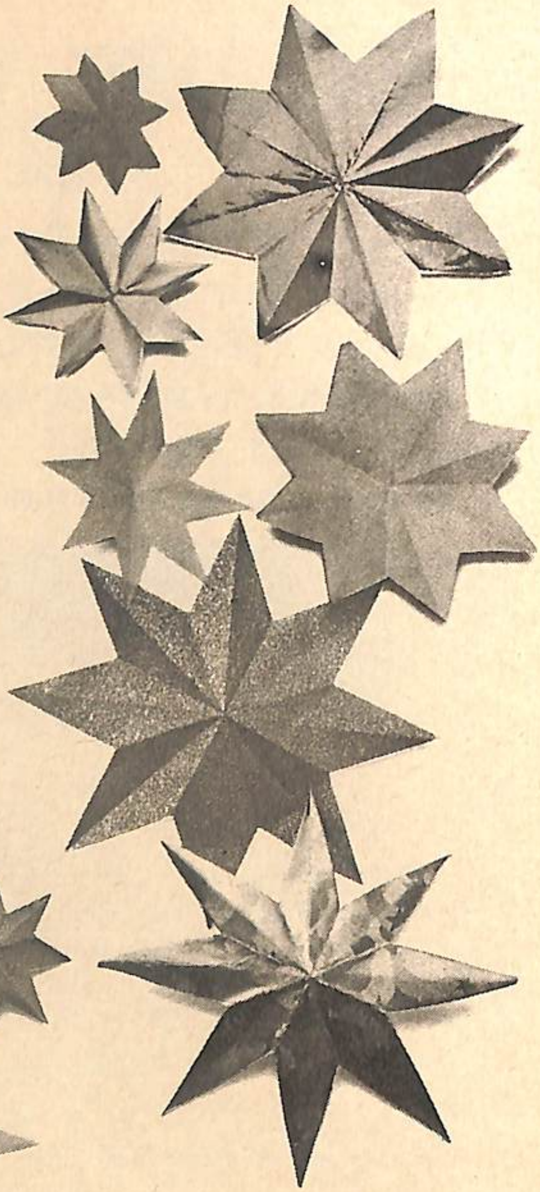

आठ कोने वाला तारा

1. चौकोर कागज़ लो और उस पर चार कोने वाला तारा बनाने के लिए की गई एक और दो नम्बर की क्रिया दोहराओ। ऐसी आकृति मिलेगी। अब कागज़ को टूटी हुई रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ो।
2. ऐसी आकृति मिलेगी। अब चित्र में कैंची के सामने दिखाई गई रेखा पर से निचले हिस्से को काटकर अलग कर लो।
3. ऐसी आकृति मिलेगी। सारे मोड़ खोल दो। लो बन गया आठ कोनों वाला तारा।

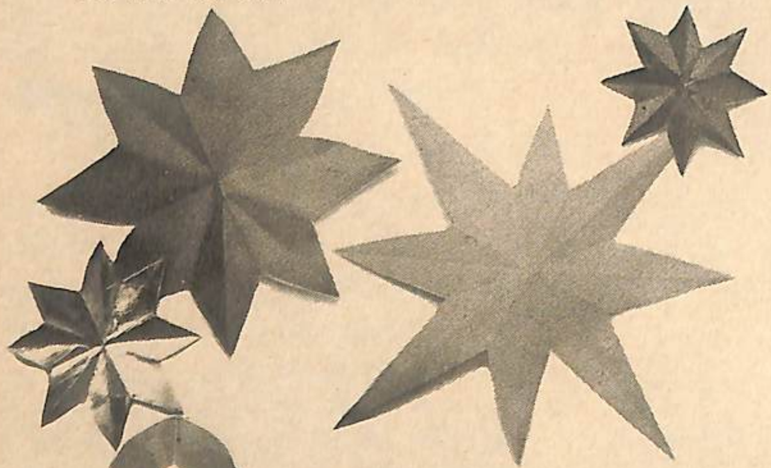

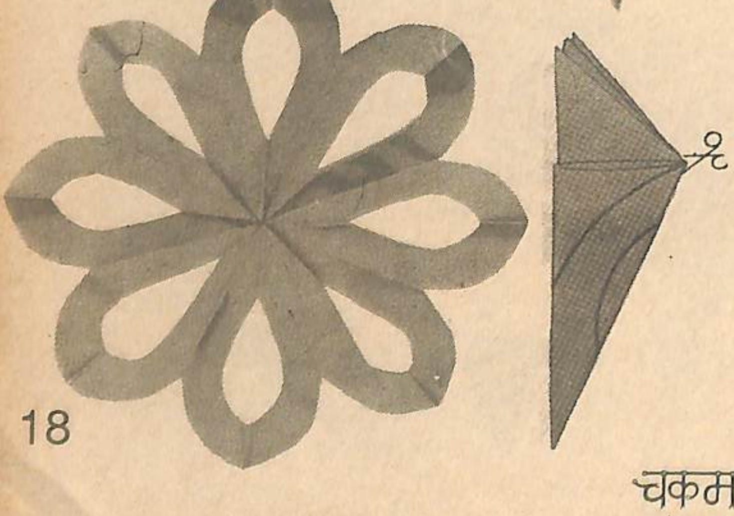

एक डिज़ाइन

आठ कोने वाले तारे से तुम एक डिज़ाइन भी बना सकते हो। पहले कागज़ को आठ कोने वाला तारा बनाने के लिए मोड़ लो। अब इस चित्र में दिखाई गई रेखाओं पर से इसे काटना है। पहले कैंची के सामने वाली रेखा पर से और फिर अर्धचन्द्राकार रेखा पर से काटो।

अब सारे मोड़ खोल लो। देखो कितनी सुन्दर डिज़ाइन बन गई है।

हल्का-भारी

उद्देश्य

अपने आसपास की चीज़ों की विशेषताओं के बारे में अनुमान लगाना।
हल्की और भारी वस्तुओं का वर्गीकरण।

बच्चों की संख्या

6 से 8 बच्चे इस खेल को खेल सकते हैं।

सामग्री

एक तराजू जिसको कि कक्षा में टाँगा जा सके।
अपने आसपास के परिवेश से हल्की और भारी वस्तुओं को इकट्ठी करना जैसे पत्थर, लकड़ी, फल, किताबें, स्लेट इत्यादि।

बच्चे आसपास से हल्की भारी वस्तुएँ इकट्ठी करके लाएँ और अनुमान लगाएँ कि कौन-सी वस्तु भारी होगी और कौन-सी हल्की। फिर अपने अनुमान के परीक्षण के लिए उसको तराजू पर रखकर तौलें और देखें कि कौन-सी वस्तु का पलड़ा नीचे जाता है और किसका ऊपर। इस तरह से हल्की और भारी वस्तुओं के अलग-अलग समूह बनाएँ।

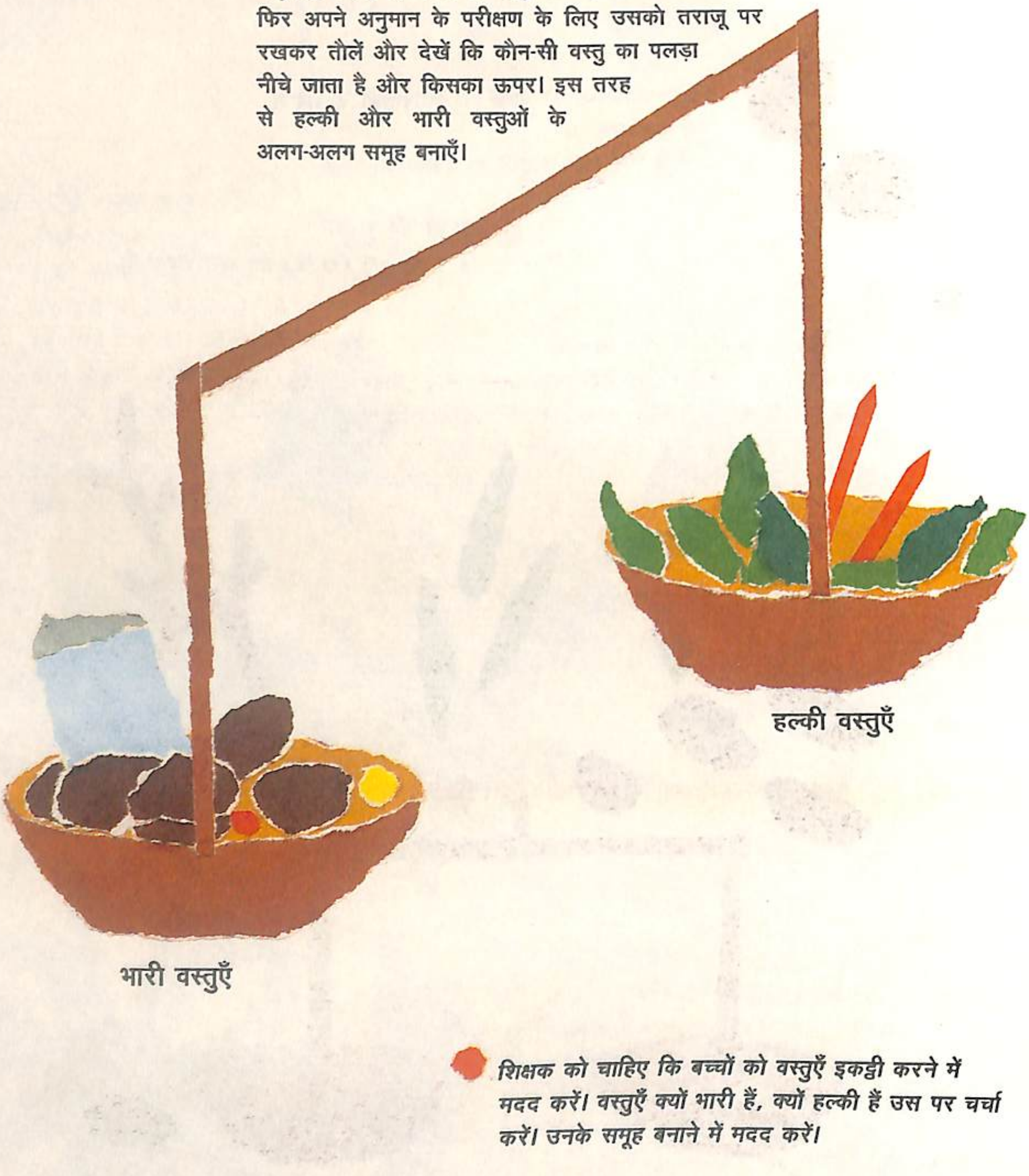

शिक्षक को चाहिए कि बच्चों को वस्तुएँ इकट्ठी करने में मदद करें। वस्तुएँ क्यों भारी हैं, क्यों हल्की हैं उस पर चर्चा करें। उनके समूह बनाने में मदद करें।

क्रमबद्ध करना

उद्देश्य

वस्तुओं को क्रमबद्ध करना।
आसपास की सामान्य वस्तुओं को भी क्रम और आकार की दृष्टि से देख पाना।

सामग्री

कक्षा में सामान्य रूप से और अधिक संख्या में उपलब्ध वस्तुएँ जैसे किताबें, पेन्सिल, चॉक, स्वयं बच्चे और आसपास के परिवेश से उपलब्ध वस्तुएँ जैसे बीज, पत्थर, पत्तियाँ इत्यादि।

बच्चों की संख्या

8 से 10 बच्चे तक इसको एक साथ खेल सकते हैं और यदि बच्चों को क्रमबद्ध करना हो तो पूरी कक्षा।

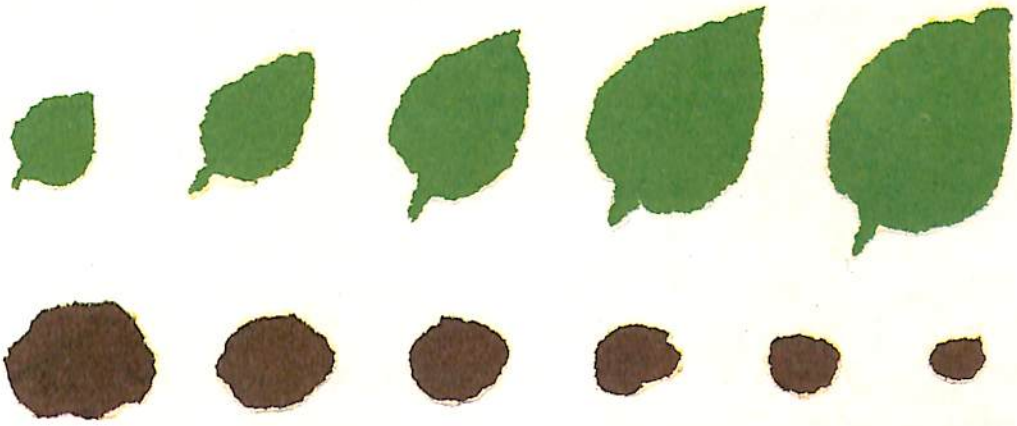

पत्तियों, पत्थरों को उनके बड़े से छोटे आकार के आधार पर क्रमबद्ध किया जा सकता है।

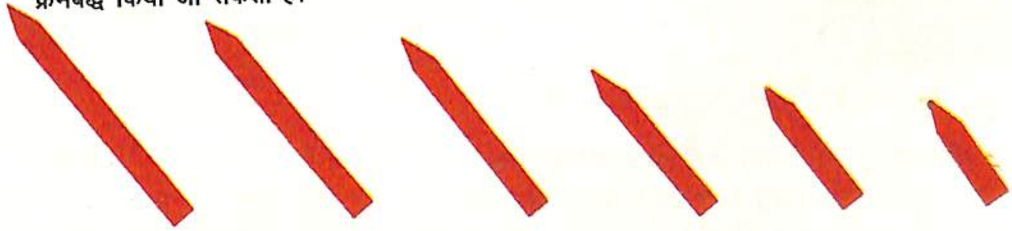

पेन्सिलों को बडे से छोटे के आधार पर।

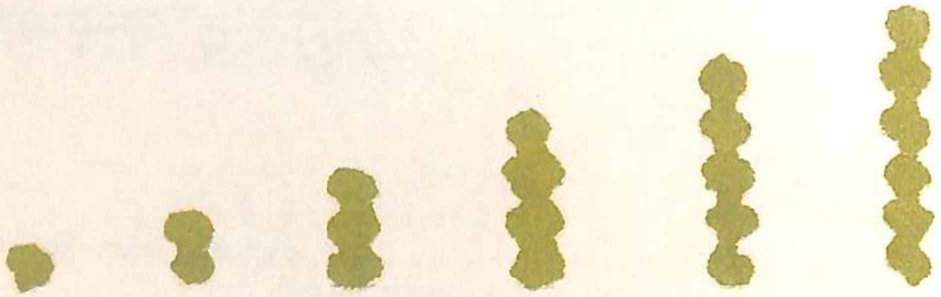

फलियों को उनके आकार और बीज की संख्या के आधार पर क्रमबद्ध किया जा सकता है।

पत्तियों को उनकी संख्या के आधार पर

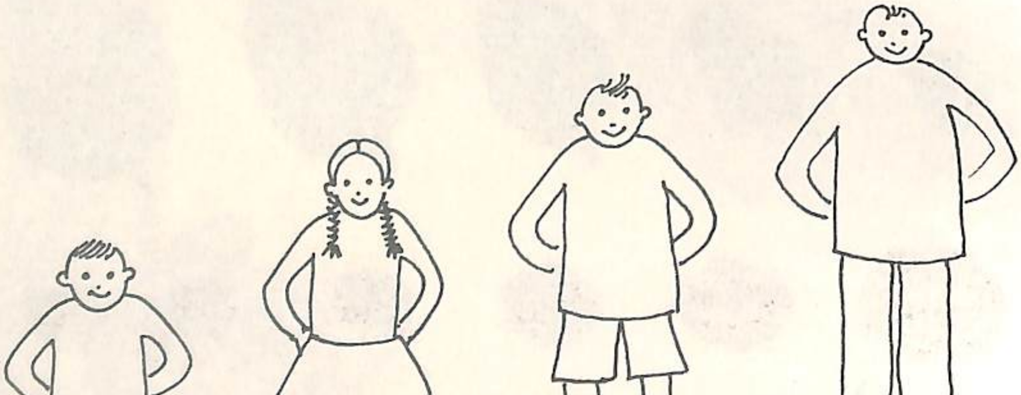

बच्चों को लम्बाई के आधार पर क्रमबद्ध करना।

कक्षा में इस्तेमाल की जाने वाली हर सामग्री को क्रम, आकार, रंग आदि गणित एवं ज्यामिति की अवधारणाओं की दृष्टि से देखने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करना और उनका इस दिशा में ध्यान आकर्षित करना।

❑ दीप्ति वैद्य
इन्डस्ट्रियल डिज़ाइन सेन्टर, बम्बई

सत्यजित राय के दो उपन्यास

❑ डॉ. हरिकृष्ण देवसरे

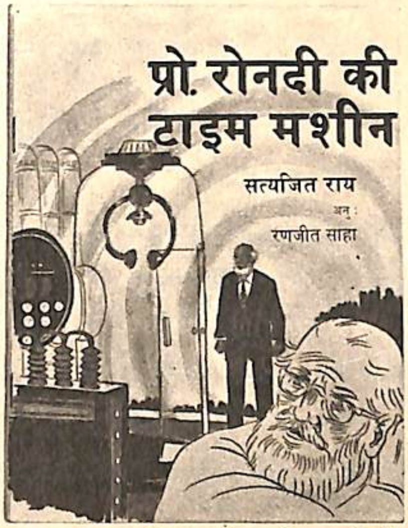

सत्यजित राय एक विश्वप्रसिद्ध फ़िल्म निर्देशक और निर्माता ही नहीं थे, बल्कि एक सफल और सशक्त लेखक भी थे। उन्होंने बच्चों के लिए अनेक रचनाएँ लिखीं और वे सराही गईं।

सत्यजित राय ने विज्ञान-कथा लेखन में भी कीर्तिमान स्थापित किए। उन्होंने प्रो. शंकु के नाम से एक चरित्र की कल्पना की थी और उसके द्वारा उन्होंने अनेक सशक्त विज्ञान-कथाओं की रचना की। प्रो. शंकु का पूरा नाम था - प्रो. त्रिलोकेश्वर शंकु। एक बार प्रो. शंकु ने 'टाइम मशीन' बनाने का निश्चय किया। ठीक उसी समय विश्व के दो अन्य वैज्ञानिक भी 'टाइम मशीन' बना रहे थे। एक थे - जर्मनी के प्रो. क्लाइव और दूसरे थे इटली के प्रसिद्ध पदार्थ-वैज्ञानिक प्रो. लुइज़ रोनदी। अचानक एक दिन प्रो. क्लाइव की हत्या हो गई। हत्या के कारणों और हत्यारों का कुछ भी पता न चला। इसके कुछ ही समय बाद प्रो. शंकु को प्रो. रोनदी का पत्र मिला कि वे टाइम-मशीन बनाने में सफल हो गए हैं। उन्होंने प्रो. शंकु को आमंत्रित किया कि वे इटली आकर उस मशीन को देखें। आने-जाने का ख़र्चा भी प्रो. रोनदी ने उठाने की बात लिखी। प्रो. शंकु के मन में उस मशीन को देखने की उत्सुकता हुई। वे प्रो. रोनदी के मेहमान बनकर इटली के मिलान शहर में पहुँचे। प्रो. रोनदी ने उनका स्वागत किया और उन्हें अपनी 'टाइम मशीन' दिखाई।

'टाइम मशीन' के निर्माण के पीछे वैज्ञानिकों की यह धारणा रही है कि उसके ज़रिए कोई भी व्यक्ति अतीत के हज़ारों साल पुराने दृश्य देख सकता है और इसी तरह निकट से लेकर सुदूर भविष्य की घटनाओं को देख सकता है।

प्रो. रोनदी ने ऐसी मशीन बनाने में सफलता तो पा ली थी, लेकिन उसमें अतीत या भविष्य की घटना के ठीक समय को निश्चित कर पाने की कमी थी। उदाहरण के लिए यदि विक्रमादित्य के दरबार में कालिदास ने शाम के समय 'मेघदूत' का पाठ किया था तो उस मशीन के ज़रिए ठीक शाम के समय पहुँचना मुश्किल था। हाँ, विक्रमादित्य के महल और दरबार में ज़रूर पहुँचा जा सकता था, पर वह सवेरे या दोपहर या रात का समय भी हो सकता था। प्रो. शंकु ने थोड़े से प्रयास से उस मशीन की यह कमी पूरी कर दी। लेकिन अचानक उन्हें मालूम हुआ कि प्रो. रोनदी इस मशीन के एकमात्र निर्माता बनकर विश्व में खूब धन कमाना चाहते हैं और वह प्रो. शंकु की हत्या करके उन्हें अपने रास्ते से हटाना चाहते हैं। प्रो. शंकु ने जब सुना तो अजीब मुसीबत में पड़ गए। किंतु उन्होंने बड़ी सूझबूझ से काम लिया और प्रो. रोनदी को परास्त कर दिया।

सत्यजित राय की इस विज्ञान-कथा में जहाँ 'टाइम मशीन' की विशषताओं और वैज्ञानिक कल्पना का सशक्त चित्रण हुआ है, वहीं इसमें भरपूर रहस्य-रोमांच भी है। पाठक के मन में वह आरम्भ से ही जिस उत्सुकता को जागृत करते हैं, उसे वह अन्त तक बनाए रखते हैं। प्रो. शंकु के प्रति पाठक सहज ही सहृदय हो उठता है और अन्त में उनकी

जान बच जाने पर सन्तोष की साँस लेता है।

डायरी शैली में लिखी विज्ञान-कथा 'प्रो. रोनदी की टाइम-मशीन' की शैली अत्यंत रोचक है। प्रत्येक चरित्र को उन्होंने एक विशिष्ट स्वरूप दिया है। मूल बांग्ला में लिखी उस कथा का हिन्दी अनुवाद डॉ. रणजीत साहा ने बड़ी ही सरल और सटीक भाषा में किया है। पुस्तक के आवरण तथा अन्दर के चित्र भी सत्यजित राय के ही बनाए हुए हैं। विज्ञान-कथा में रुचि रखने वाले बच्चों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

फ़िल्म-निर्माण की प्रक्रिया जितनी कलात्मक होती है, उतनी ही वैज्ञानिक भी। वास्तव में कैमरा-संचालन, दृश्यों का संयोजन आदि सभी कुछ वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर होता है। 'मास्टर अंशुमान' सत्यजित राय का एक ऐसा ही वैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें फ़िल्म-निर्माण की तकनीक के साथ-साथ एक बड़ी ही रोमांचक कथा का ताना-बाना भी देखने को मिलता है। 'मास्टर अंशुमान' एक बारह-तेरह साल का बालक है जिसे एक फ़िल्म में काम करने के लिए तैयार किया जाता है। फ़िल्म की शूटिंग अजमेर और उसके आसपास के क्षेत्र में होती है। मास्टर अंशुमान फ़िल्म यूनिट के साथ अजमेर जाता है। फ़िल्म के कुछ हिस्सों की शूटिंग हीरे–जवाहरात के प्रसिद्ध व्यापारी स्वरूपलाल लोहिया की कोठी में हुई। परिचय के दौरान लोहियाजी ने फ़िल्म-यूनिट वालों को एक बड़ी-सी 'नीलकान्त· मणि' दिखाई जो एक आश्चर्यजनक वस्तु थी और उसकी क़ीमत का अनुमान लगाना कठिन था। वह अनमोल थी।

फ़िल्म की शूटिंग के दौरान अंशुमान को एक व्यक्ति बिलकुल नहीं भाया। वह थे - जगन्नाथ डे यानी जग्गू उस्ताद, जो कि डाकू छगनलाल की भूमिका कर रहे थे। लेकिन फ़िल्म में स्टंटमैन का काम करने वाले कैप्टेन कृष्णन् से अंशुमान की अच्छी दोस्ती हो गई थी।

अभी शूटिंग चल रही थी कि पता चला कि लोहिया सेठ के घर से नीलकान्त मणि चोरी हो गई है। पुलिस ने अपने ढंग से चोरी का पता लगाना शुरू किया लेकिन न जाने क्यों अंशुमान और कैप्टेन कृष्णन् का शक एक ही व्यक्ति पर गया। वे थे - जग्गू दादा। फिर तो दोनों ने जिस तरह से खोज की, वह उपन्यास का बेहद रोचक हिस्सा है। अन्त में नीलकान्त मणि मिल गई।

मास्टर अंशुमान को यों पूरी तरह वैज्ञानिक-उपन्यास तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन फ़िल्म निर्माण से जुड़ी जिन अनेक बातों को उपन्यास में बड़े सहज ढंग से बताया गया है, वह जानकारी रोचक है और पाठक को बाँध लेती है।

उपन्यास के अनुवादक डॉ. रणजीत साहा ने भाषा को सहज बनाया है। पुस्तक का आवरण-चित्र स्वयं सत्यजित राय का बनाया हुआ है।

पुस्तकें :

1. **प्रो. रोनदी की टाइम मशीन । ले. सत्यजित राय । अनुवादक : रणजीत साहा । पृष्ठ संख्या : 34 । मूल्य :18.00**
2. **मास्टर अंशुमान । ले. सत्यजित राय । अनुवादक : डॉ. रणजीत साहा । पृष्ठ : संख्या 64 । मूल्य : 40.00**

दोनों के प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21 ए. दरियागंज, नई दिल्ली 110002

श्वसन

असलम के फेफड़े की आत्मकथा तुमने पढ़ ही ली होगी। फेफड़े का मुख्य काम है साँस लेना यानी श्वसन। तो इस बार श्वसन से सम्बंधित कुछ प्रयोग करो। प्रयोग के दौरान जो सवाल उठें या उभरें, उनके उत्तर पाने के लिए अपने दोस्तों, शिक्षकों और अन्य जानकार व्यक्तियों से चर्चा करो।

भोजन के बिना हम कई हफ़्तों तक जिन्दा रह सकते हैं। तुमने सुना होगा कि उपवास या भूख-हड़ताल करने वाले लोग अक्सर ऐसा करते हैं। पानी की कमी होने पर भी हम कुछ दिनों तक गुज़ारा कर सकते हैं।

पर अगर थोड़ी-सी देर भी हवा न मिले, तो क्या होगा?

प्रयोग-1

आओ, यह एक प्रयोग द्वारा समझें। एक ऐसी घड़ी लो जिसमें सेकण्ड वाली सुई हो। यदि तुम्हें घड़ी न मिले, तो समान गति से गिनती गिनने का अभ्यास करो। तुम गिनती गिनकर भी समय नाप सकते हो। अपने मुँह को बन्द करो और बाएँ हाथ से नाक को दबाओ जिससे हवा अन्दर न जा सके।

तुम इस प्रकार कितनी देर तक मुँह व नाक दोनों बन्द रख सकते हो?

कुछ देर तक मुँह व नाक दोनों बन्द रखने के बाद तुम्हें क्या महसूस हुआ?

प्रयोग-2 : एक मिनट में कितनी बार साँस?

अपने हाथ की किसी उँगली की पिछली सतह (नाखून वाली) को अपने एक साथी की नाक के पास ले जाओ। अपने साथी से कहो कि वह स्वाभाविक ढंग से साँस ले और छोड़े।

साथी द्वारा साँस छोड़ने पर तुम्हें उँगली पर क्या महसूस होता है?

इस विधि से यह पता लगाओ कि तुम्हारा साथी एक मिनट में कितनी बार साँस लेता है व छोड़ता है।

एक मिनट में तुम्हारे साथी ने जितनी बार साँस छोड़ी, क्या उतनी ही बार साँस अन्दर भी ली?

शरीर के अन्दर हवा खींचने की क्रिया को अंतःश्वसन (साँस लेना) और हवा बाहर छोड़ने की क्रिया को प्रश्वसन (साँस छोड़ना) कहते हैं। एक मिनट में जितनी बार साँस बाहर छोड़ी जाती है, उस संख्या को **प्रश्वसन** दर कहा जाता है।

कसरत और साँस

तुमने अक्सर देखा होगा कि कुछ देर भागने या कसरत करने के बाद हम हाँफने लगते हैं। तो क्या कसरत करने अथवा भागने से हमारी साँस लेने व छोड़ने की गति पर भी प्रभाव पड़ता है?

तुम्हारी राय में कसरत करने के बाद प्रश्वसन दर घटती है या बढ़ती है?

प्रयोग-3 : क्या छोड़ी हुई व ली हुई हवा एक जैसी है?

अपनी तर्जनी उँगली की पिछली सतह पर मुँह या नाक से हवा छोड़ो।

क्या यह हवा गर्म है?

अब एक सायकल पम्प द्वारा उँगली की उसी सतह पर हवा फेंको।

क्या सायकल पम्प द्वारा छोड़ी हुई हवा भी गर्म है?

प्रयोग-4

चेहरा देखने का एक शीशा लो। इसको एक कपड़े से अच्छी तरह साफ़ कर लो। मुँह से इस शीशे पर हवा छोड़ो।

शीशे की सतह को ध्यान से देखो और बताओ कि तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है।

शीशे को फिर से साफ़ करो और इस बार सायकल पम्प से उस पर हवा फेंको।

क्या इस बार भी शीशे पर पहले जैसी क्रिया हुई?

ऊपर के प्रयोगों के आधार पर क्या तुम बता सकते हो कि छोड़ी हुई हवा और ली हुई हवा में क्या-क्या अन्तर हैं?

ऊपर के प्रयोगों में सायकल पम्प का उपयोग क्यों किया गया है?

क्या यह मानना ठीक है कि सायकल पम्प द्वारा फेंकी गई हवा और हमारे चारों ओर की हवा जिसे हम साँस द्वारा अन्दर लेते हैं, एक जैसी है?

प्रयोग-5

आओ अब हम एक ऐसा प्रयोग करें जिसमें बाहर की हवा का बिना सायकल पम्प के उपयोग किया जाएगा। इस के लिए तुम्हें फ़िनाफ़्थलीन के गुलाबी सूचक घोल और चूने के पानी की आवश्यकता होगी। फ़िनाफ़्थलीन तुम्हें स्कूल की प्रयोगशाला में मिल सकता है। इस प्रयोग में फ़िनाफ़्थलीन के गुलाबी सूचक घोल और चूने के पानी पर अन्दर ली गई और बाहर छोड़ी गई हवा के प्रभाव का बारी-बारी से अध्ययन किया जाएगा।

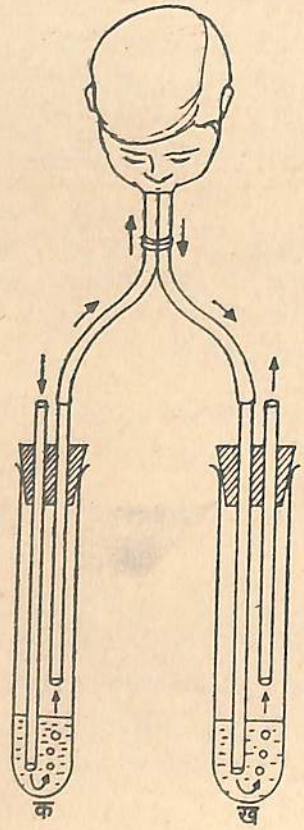

इसके लिए चित्र में दिखाया गया उपकरण जमाओ। दोनों उफननलियों में लगभग एक चौथाई ऊँचाई तक गुलाबी सूचक घोल भरो।

उफननलियों पर 'क' व 'ख' निशान लगाओ। अब इस उपकरण में बारी-बारी से हवा फूंको और खींचो।

प्रयोग करते-करते नीचे दिए प्रश्नों के उत्तर पता करो -

(क) जब हम मुँह द्वारा साँस अन्दर खींचते हैं, तब हवा किस उफननली में से होकर अन्दर जाती है? इसका पता तुम्हें कैसे लगता है?

(ख) जब हम साँस छोड़ते हैं, तब हवा किस उफननली में से होकर बाहर निकलती है? क्या तुम बता सकते हो कि यह दूसरी उफननली में से भी होकर बाहर क्यों नहीं निकलती?

(ग) किस उफननली में सूचक घोल का रंग बदला? जिसमें से होकर हवा शरीर के अन्दर जाती है या जिसमें से होकर शरीर की हवा बाहर निकलती है?

(घ) अन्दर ली गई और बाहर छोड़ी गई हवा क्या एक समान हैं? अगर नहीं, तो उनमें क्या अन्तर है?

दोनों उफननलियों को अब अच्छी तरह से धोकर साफ़ करो और इनमें लगभग एक-चौथाई ऊँचाई तक चूने का पानी भरो।

अब जैसा कि ऊपर के प्रयोग में किया गया था, उसी प्रकार इनमें भी हवा फूंको और खींचो।

इस प्रयोग के आधार पर नीचे दिए प्रश्नों के उत्तर पता करो -

(क) प्रयोग शुरू करने के पहले उफननली 'क' और 'ख' में चूने के घोल का रंग कैसा था?

(ख) हवा फूँकने और खींचने पर किस उफननली में चूने का पानी दूधिया हो गया?

(ग) इस प्रयोग से तुम्हें अन्दर ली जाने वाली और बाहर छोड़ी जाने वाली हवा के किस अन्तर का पता चला?

तुम अगर ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसों के गुणों से परिचित हो तो –

इस जानकारी के आधार पर क्या तुम बता सकते हो कि बाहर छोड़ी गई हवा में कौन-सी गैस उपस्थित है?

बाहर छोड़ी गई हवा में यह गैस कैसे और कहाँ से आई होगी? सोचकर बताओ।

श्वसन : ऑक्सीजन व कार्बन डाइऑक्साइड

तुमने सुना होगा कि बड़े अस्पतालों में ऑक्सीजन गैस से भरे सिलिण्डर रखे जाते हैं। जब कोई व्यक्ति घायल होकर या अन्य किसी गम्भीर अवस्था में अस्पताल पहुँचता है और उसको साँस लेने में तकलीफ़ होती है, तब नाक में ऑक्सीजन सिलिण्डर से एक रबर नली जोड़कर उसे ऑक्सीजन दी जाती है। कभी-कभी ऑपरेशन करते समय भी मरीज़ को इसी प्रकार ऑक्सीजन देनी पड़ती है।

श्वसन की क्रिया में पौधे और प्राणी ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं और बिना ऑक्सीजन के कोई भी जीवधारी ज़िन्दा नहीं रह सकता।

क्या तुम बता सकते हो कि साँस लेने में तकलीफ़ होने पर ऑक्सीजन ही क्यों दी जाती है? कोई अन्य गैस या हवा क्यों नहीं?

ऑक्सीजन को प्राणवायु क्यों कहते हैं?

चारों तरफ से बन्द कमरे में यदि बहुत से लोग बैठे हों, तो वहाँ पर घुटन क्यों महसूस होती है?

मुँह ढककर सोना क्यों एक ख़राब आदत मानी जाती है?

(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की कक्षा-सात की पाठ्यपुस्तक 'बाल वैज्ञानिक' से साभार)

(पृष्ठ 11 का शेष)

कफ़ मेरी हवा की थैली में गिर जाए तो ऐसा लगेगा जैसे पूरे फेफड़े में पानी भर गया हो। और असलम ऐसा महसूस करेगा, जैसे वह पानी में डूब रहा है। भला हो खाँसी का जो उसे ऐसा महसूस होने से बचाती है। उसे भी यह बात मालूम नहीं है। असल में होता यह है कि खाँसी के साथ कफ़ या थूक बाहर आता रहता है। मगर असलम है कि लगातार खाँसी रोकने की दवा पीता रहता है। इससे सारा कफ़ अन्दर ही जमा होता रहेगा और यह न तो असलम के लिए अच्छा है न मेरे लिए। थोड़ी-सी शारीरिक मेहनत करने पर ही असलम की साँस फूलने लगती है, सो उसे मेरी देखभाल करनी चाहिए। एक पुरानी कहावत है, ''अगर तुम्हें महसूस होने लगे कि तुम्हारे पास फेफड़े हैं, तो तुम्हारी परेशानी की शुरुआत हो चुकी है।''

मेरी सबसे अच्छी देखभाल तो यही है कि मुझे अच्छी साफ़ हवा मिले। पर अगर असलम बीड़ी पीना भर भी छोड़ दे, तो भी मुझे बहुत राहत मिलेगी। फिर थोड़ी-बहुत कसरत और थोड़ा ठीक-ठाक खाना भी मददगार होगा। सुबह कसरत करने, पैदल घूमने या दौड़ने से मेरे अन्दर गहराई तक ताज़ी हवा जाती है, और यह मेरे लिए अच्छा ही है। और फिर कुछ कसरतें तो ख़ास मेरे लिए ही बनी हैं। असलम को इसकी भी आदत डालनी चाहिए।

असलम को लगता है कि उसके हर बार साँस छोड़ते ही मैं ख़ाली हो जाता हूँ। यह भी एक गलतफ़हमी है। वह चाहे तो जाँचकर देख ले। नाक से पूरी साँस छोड़ने के बाद भी वह चाहे तो देर तक मुँह से बची-खुची हवा निकाल सकता है। अगर वह हर रोज़ 3-4 बार इस तरह से मेरी सफ़ाई करे तो मेरा ही नहीं उसका भी भला होगा।

सो असलम से मेरी एक ही गुज़ारिश है। भैया, कुछ मेरा भी ख़्याल रखो!

('आई एम जोज़ बॉडी' से साभार, प्रस्तुति : टुलटुल विश्वास)

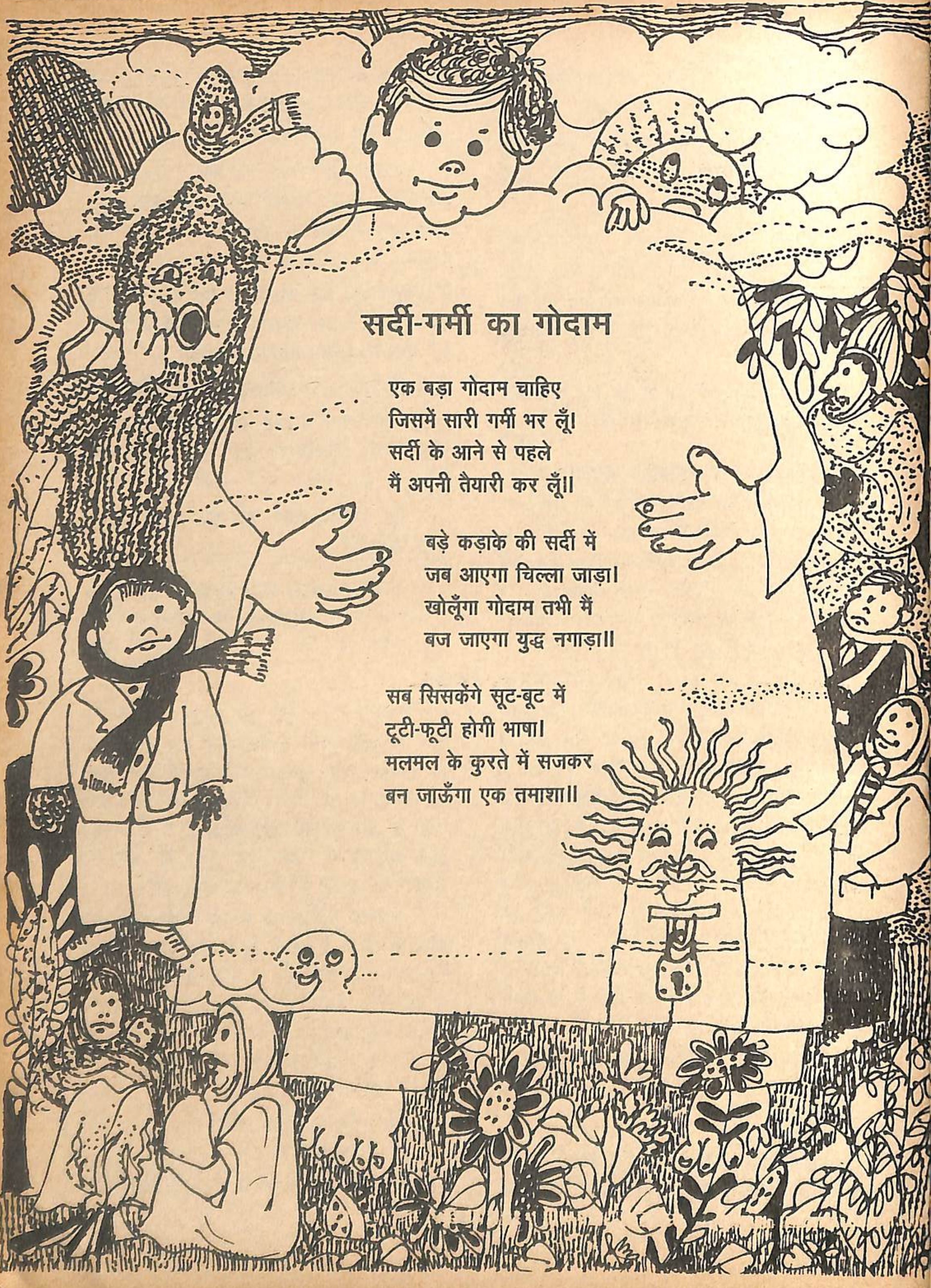

सर्दी-गर्मी का गोदाम

एक बड़ा गोदाम चाहिए
जिसमें सारी गर्मी भर लूँ।
सर्दी के आने से पहले
मैं अपनी तैयारी कर लूँ।।

बड़े कड़ाके की सर्दी में
जब आएगा चिल्ला जाड़ा।
खोलूँगा गोदाम तभी मैं
बज जाएगा युद्ध नगाड़ा।।

सब सिसकेंगे सूट-बूट में
टूटी-फूटी होगी भाषा।
मलमल के कुरते में सजकर
बन जाऊँगा एक तमाशा।।

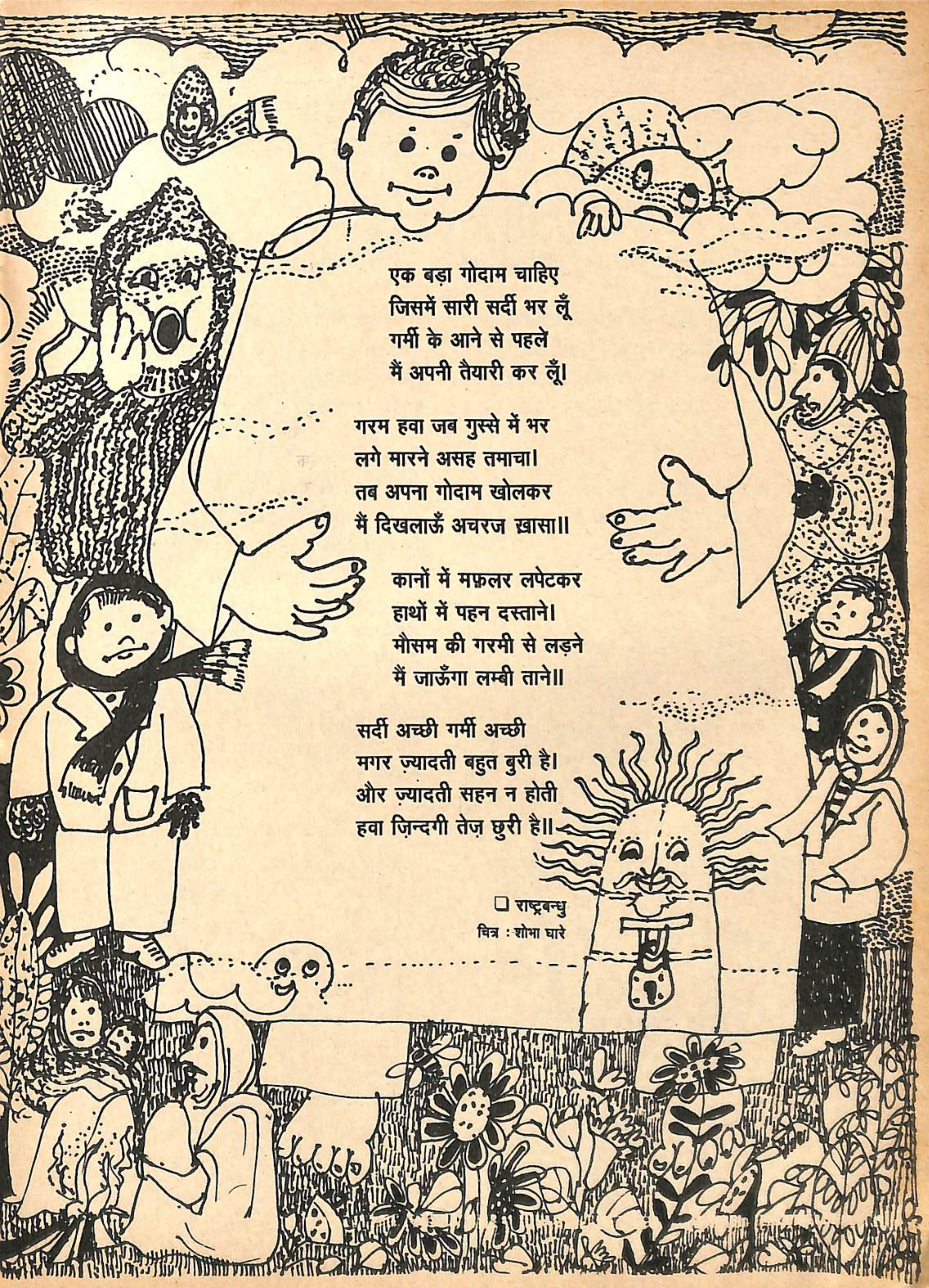

एक बड़ा गोदाम चाहिए
जिसमें सारी सर्दी भर लूँ
गर्मी के आने से पहले
मैं अपनी तैयारी कर लूँ।

गरम हवा जब गुस्से में भर
लगे मारने असह तमाचा।
तब अपना गोदाम खोलकर
मैं दिखलाऊँ अचरज ख़ासा॥

कानों में मफ़लर लपेटकर
हाथों में पहन दस्ताने।
मौसम की गरमी से लड़ने
मैं जाऊँगा लम्बी ताने॥

सर्दी अच्छी गर्मी अच्छी
मगर ज़्यादती बहुत बुरी है।
और ज़्यादती सहन न होती
हवा ज़िन्दगी तेज़ छुरी है॥

❑ राष्ट्रबन्धु

चित्र : शोभा घारे

माथापच्ची

(1)

चाय से भरे दो डिब्बों की आकृति बिलकुल समान है। पहले डिब्बे का वज़न 2 किलोग्राम है और उसकी ऊँचाई 12 से.मी. है। दूसरे का वज़न 1 किलोग्राम है और ऊँचाई 9.5 से.मी. है। डिब्बों में केवल चाय का वज़न कितना है?

(2)

इन सात गोलों में दो और गोले मिलाओ और फिर उन्हें इस तरह जमाओ कि तीन गोलों वाली दस लाइनें बन जाएँ।

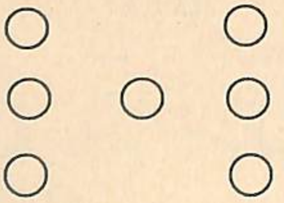

(3)

किसी एक संख्या को आठ बार इस तरह लिखो कि योग 1000 बन जाए। हाँ इसके लिए तुम गुणा, भाग, ऋण, धन किसी भी चिन्ह का प्रयोग कर सकते हो।

(4)

दो बाल्टियाँ पानी से भरी रखी हैं। एक बाल्टी में तापमान 20 डिग्री सेंटीग्रेड है और दूसरी में 20 डिग्री फैरनहाइट। अगर दोनों बाल्टियों में एक-एक अठन्नी डाली जाएँ तो बताओ किस बाल्टी में अठन्नी पहले नीचे पहुँचेगी?

(5)

चार दोस्त एक तालाब के किनारे बैठकर कुछ ऐसी बातें कर रहे थे। एक ने कहा, 'मैं चाहूँ तो इस तालाब में एक बूँद पानी न रहने दूँ।'

दूसरे ने कहा, 'मेरे हाथ में जो अंगूठी है मैं उसपर रूमाल बिछाकर सो सकता हूँ।'

तीसरे ने कहा, 'मैं हाथ भर की पेटी में आठ हाथ की मूर्ति रख सकता हूँ।'

चौथे ने कहा, 'मैं चाहूँ तो सबको हँसता हुआ चाँद दिखा सकता हूँ।'

चारों ने अपना-अपना कहा करके दिखाया। सोचो तो ज़रा कैसे?

---

(6)

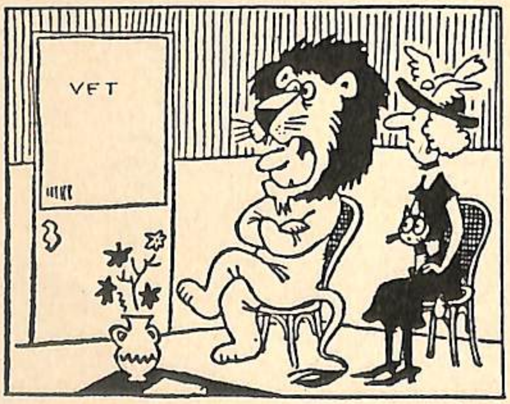

ऊपर दिए ये दोनों चित्र अलग-अलग हैं फिर भी इनमें कुछ समानताएँ हैं। तुम ऐसी कोई छः समानताएँ ढूँढो तो जानें।

(6)

एक किसान ने कहा, "मेरा खेत कुल चार वर्ग किलोमीटर का है।"

दूसरे ने कहा, "अरे यह तो कुछ भी नहीं है। मेरा खेत तीन किलोमीटर का वर्ग है।"

बातें तो उनमें और भी बहुत हुईं। पर तुम इतनी बात से यह बता सकते हो कि किसका खेत बड़ा है?

(7)

मोहन और रश्मि सफ़र पर निकले। रास्ते में एक अपरिचित ने मोहन से पूछा कि यह (रश्मि) आपकी क्या लगती है।

मोहन ने सीधा जवाब देने के बदले कुछ इस तरह कहा, "मेरी माँ इसकी माँ की बुआ है।"

वो साहब तो चक्कर में पड़ गए। तुम भी बूझो।

वर्ग पहेली - 34

1	■	2		3	■	4	5	
6			■	7		■		■
	■		■		■	8		9
■	10	■	11		12	■	■	
13				■	14		15	
	■	■	16	17		■		■
18	19		■		■	20	■	21
■		■	22		■	23		
24			■	25			■	

संकेत : बाएँ से दाएँ

2. आदम की उलटफेर में आय (3)
4. वर कहाँ गया में है चमकीला पत्तर (3)
6. याद रखना में जगह (3)
7. चपड़ा भी लाख भी (2)
8. ढेर (3)
11. कण से भी छोटा (3)
13. चंचल (4)
14. मन दस बार चाहे तो बैठने की जगह मिलेगी (4)
16. बजाया हुआ (3)
18. जोड़ी (3)
22. ठिकाना (2)
23. आम के आम गुठलियों से बाजा (3)
24. कमला की उलटफेर में रचना (3)
25. ख़ाली होना (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. स्वभाव (3)
2. हाथ कंगन को ..... (3)
3. दाल वाली फसलें (4)
5. ज़मीन का टुकड़ा या अहाता (3)
9. दरअसल की काट-छाँट में है खाने-पीने का सामान (3)
10. मस्तक भी और हथियार भी (2)
11. हाथी के गले की रस्सी या सूत का धागा (3)
12. टकटकी मत लगाओ में है मूल्य (3)
13. लम्बी उमर (3)
15. फ़ायदा (2)
17. दिन में आसावरी राग गाओ तो परदेसी दिखेगा (4)
19. छोटा क़िला (3)
20. प्रकाशित होना (3)
21. सुनार, अलग और निराला (3)

● सर्वशुद्ध हल भेजने वालों को चकमक तीन-माह तक उपहार में भेजी जाएगी। हल के लिए वर्ग पहेली की जाली को चकमक से काटकर न भेजें। बल्कि उसमें जो शब्द आने वाले हों उन्हें संकेत के ही नंबर देकर लिख दें। वर्ग पहेली -34 का हल जुलाई, 94 अंक में देखें।

कबीट

कबीट का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाता है, यह कहावत नहीं हक़ीक़त है । कबीट जिसने देखा और खाया है, वही इस बात का मर्म समझ सकता है । वैसे कबीट जिसे कैंथा भी कहा जाता है स्कूल के बाहर बेर और इमली आदि के साथ बिकने वाला एक मुख्य फल है । अब यह बात अलग है कि पेड़ से कबीट तोड़कर (वो भी पत्थर मारकर) खाने का मजा ही कुछ और है ।

कबीट का पेड़ गर्म जलवायु का पेड़ है। भारत के सभी हिस्सों में यह मिलता है। भारत के अलावा श्रीलंका में भी यह पाया जाता है । गाँवों में खेतों की मेड़ पर, सड़क के किनारे कबीट के पेड़ लगाए जाते हैं । हाँ, यह बड़ी आसानी से किसी भी तरह की ज़मीन पर उग आता है ।

पेड़ की ऊँचाई दस से पन्द्रह मीटर तक होती है। पत्ते छोटे होते हैं तथा उनसे गंध आती है। इसके फूल छोटे और भीनी-भीनी सुगंध वाले होते हैं। फल गोल और लगभग छोटी गेंद के बराबर होता है। फल पर कड़ा आवरण होता है। कच्चे फल का रंग भूरा-सा होता है। लेकिन पकने पर सफ़ेद-सा हो जाता है। कड़े आवरण के अन्दर रसदार गूदा होता है। कच्चे फल का गूदा सफ़ेद और पके हुए फल का गूदा हल्का बादामी-सा हो जाता है ।

पेड़ की लकड़ी पीली, सफ़ेद-सी और भारी होती है । पेड़ की छाल हल्के काले-से रंग की होती है । इसकी लकड़ी से मोची जूतों के फर्मे बनाते है। तने से गोंद, स्याही और रंग भी मिलता है। रंग कपड़ों को रंगने के काम आता है ।

फल का दवाई के रूप में उपयोग होता है । फल को आग में भूनकर, चटनी बनाकर भी खाया जाता है । गूदे को सुखाकर रख लिया जाता है और बाद में खाने में उपयोग किया जाता है ।

कबीट को अंग्रेज़ी में वुड एप्पल (*Wood Apple*) कहते हैं ।

□□□

क़िस्सा आफ़न्ती का

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

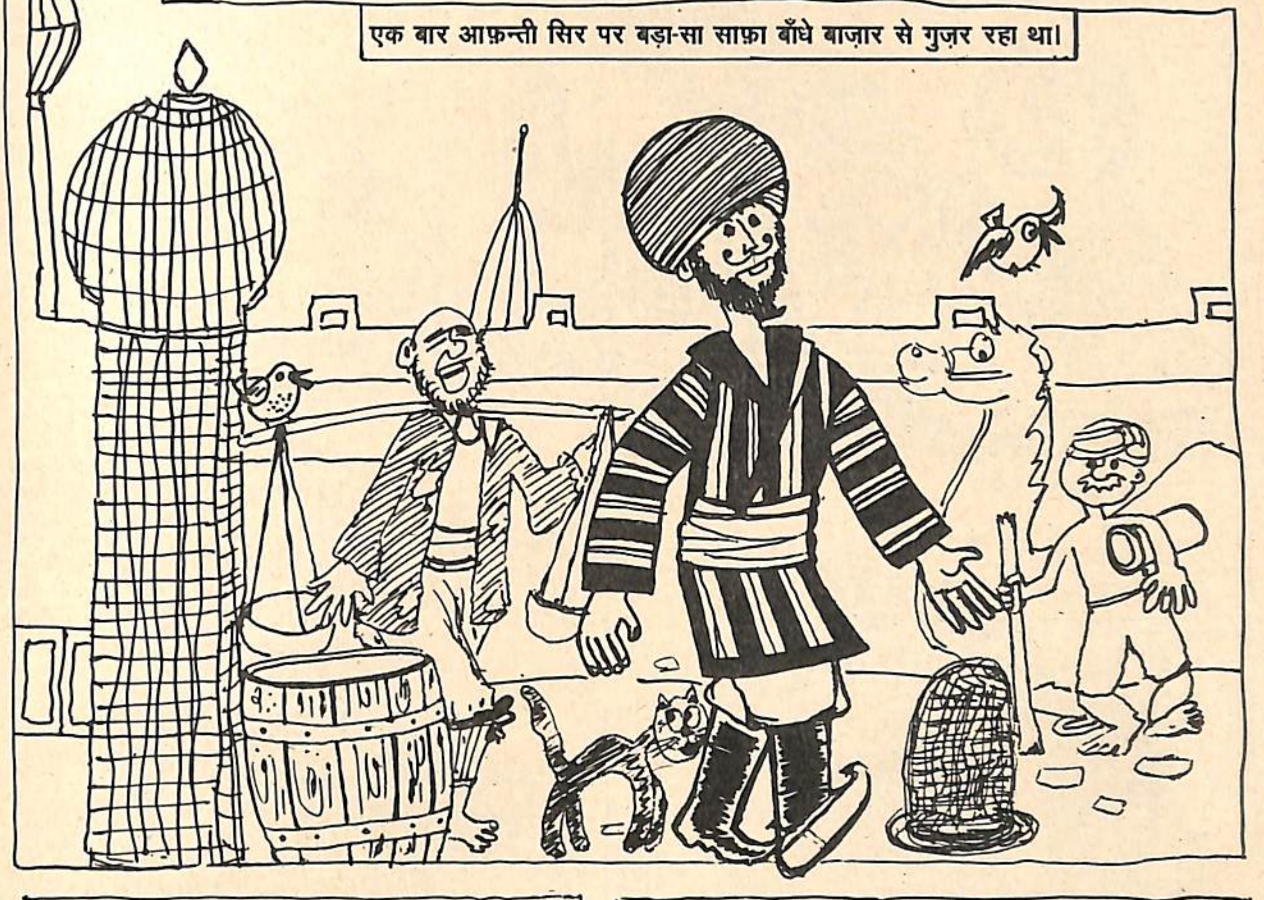

जनाब आलिम-फ़ाज़िल साहब, मेहरबानी करके मेरा यह ... ख़त पढ़ दीजिए !
ख़त पढ़ दूँ और मैं! भैया माफ़ करो! मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है ।
क्यों मज़ाक करते हैं, आपने यह बड़ा-सा साफ़ा बाँध रखा है, आपको पढ़ना-लिखना तो आता ही होगा !
ओहो ..... समझा !

भैया अगर साफ़ा बांधने से पढ़ना-लिखना आता है तो ....
.....लो अब तुम ख़ुद ही अपना ख़त पढ़ लो !

मनुष्य महाबली कैसे बना!

हज़ार-साला स्कूल

हर काम को करने का कौशल होना चाहिए, और यह आसमान से नहीं टपकता। जानकारी, ज्ञान ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें औरों से प्राप्त किया जाता है।

अगर हर बढ़ई को कुल्हाड़े, आरे और रंदे की ईजाद करने और फिर उनका उपयोग कैसे हो, इसका पता लगाने के साथ शुरूआत करनी पड़ती, तो दुनिया में एक भी बढ़ई न होता।

अगर, भूगोल पढ़ने के लिए हममें से प्रत्येक को पहले दुनिया का चक्कर लगाना पड़े, अमरीका को फिर खोजना पड़े, अफ्रीका की तलाश करना पड़े, एवरेस्ट पर चढ़ना पड़े, हर द्वीप आदि को जाकर गिनना पड़े, तो हम चाहे हज़ार साल जी लें, तो भी सबके लिए काफ़ी समय हमारे पास नहीं होगा।

हम जितना आगे बढ़ते जाते है, हमें उतना ही अधिक सीखना पड़ता है। हर नई पीढ़ी को अपने से पहली पीढ़ी से लगातार अधिक मात्रा में ज्ञान, सूचना और आविष्कार प्राप्त होते हैं।

लेकिन पाषाण युग में मानव-जाति का अनुभव जमा होना शुरू ही हो रहा था। मनुष्य के काम आज की तरह जटिल न थे। यही कारण था कि किसी व्यक्ति को अपनी शिक्षा पूरी करने में अधिक समय न लगता था। फिर भी, ऐसी चीज़ें थी, जो उसे भी सीखनी पड़ती थीं।

उसे जानवर का पता लगाने और उसकी खाल उतारने, डेरा बनाने, चकमक का चाकू बनाने के लिए ज्ञान और निपुणता की आवश्यकता थी।

और ज्ञान आता कहाँ से है?

मनुष्य किसी भी निपुणता को लेकर नहीं पैदा होता। वह उसे प्राप्त करता है। इससे यह पता चलता है कि मनुष्य जन्तु-जगत को कितना पीछे छोड़ आया है। जानवर अपने सभी ज़िन्दा औज़ारों और उनके उपयोग के ज्ञान को अपने माता-पिता से वंशानुक्रम में प्राप्त करता है; बिलकुल वैसे ही, जैसे वह अपनी चमड़ी के रंग या बदन की आकृति को प्राप्त करता है। सूअर को यह नहीं सीखना पड़ता कि ज़मीन को कैसे खोदे क्योंकि वह विशेषकर इसी काम के लिए एक मज़बूत थूथनी को लिए पैदा होता है। चूहे को यह नहीं सीखना पड़ता कि लकड़ी को कैसे काटे, क्योंकि उसके पैने कुतरनेवाले दाँत

अपने-आप उग आते हैं। यही कारण है कि पशुओं की न वर्कशॉपें होती हैं, न स्कूल।

अण्डे से अभी-अभी निकला बत्तख का नन्हा-सा चूज़ा तुरन्त ही मक्खियों और पानी के कीड़ों को पकड़ने लगता है, यद्यपि उसे किसी ने यह सिखाया नहीं है। कोयल के बच्चे अजनबी घोंसलों में अपने असली माँ-बाप की निगरानी के बिना बड़े होते हैं। लेकिन शरद के आते ही वे अपने-आप चल पड़ते हैं और अपना रास्ता ढूँढ लेते हैं, यद्यपि किसी ने उन्हें पहले कभी यह रास्ता नहीं दिखाया है।

जानवर अपने माता-पिता से बेशक बहुत-कुछ सीखते है। लेकिन स्कूल से मिलती-जुलती भी किसी चीज़ का कोई सवाल नहीं उठ सकता।

लेकिन मनुष्य के सन्दर्भ में बात ही दूसरी है। मनुष्य अपने औज़ार आप बनाता है, क्योंकि वह उन्हें लिए-लिए पैदा नहीं होता।

इसका मतलब है कि वह इन औज़ारों के उपयोग या अपनी निपुणताओं को अपने माता-पिता से वंशानुक्रम में नहीं प्राप्त करता, वरन अपने बड़ों या शिक्षकों से उन्हें सीखता है।

लोग अगर व्याकरण या गणित का ज्ञान लिए-लिए पैदा होते, तो हर आलसी छात्र को इससे बड़ी खुशी होती। फिर स्कूलों की कोई ज़रूरत न रहती। लेकिन इससे उसे सचमुच अधिक लाभ न होता। अगर स्कूल न होंगे, तो लोग नया कुछ भी न सीख पाएँगे। मनुष्य की सभी क्षमताएँ और ज्ञान एक ही स्तर पर रहेंगे, जैसे, मिसाल के लिए, किसी गिलहरी की क्षमताएँ।

लेकिन मानव-जाति में लोग जन्मजात क्षमताएँ लिए-लिए पैदा नहीं होते। वे पढ़ते और सीखते हैं, और हर पीढ़ी मानव-अनुभव के सामान्य भण्डार में कुछ अपना योगदान करती है। यह अनुभव लगातार बढ़ता रहता है। मानव-जाति अज्ञात की सीमाओं को अधिकाधिक दूर हटाती चली जाती है।

मनुष्य ने हज़ार-साला स्कूल में पहले-पहल पाषाण युग में प्रवेश किया। बूढ़े, अनुभवी शिकारी तरूणों को शिकार की कठिन कला सिखाया करते थे - जानवर को उसके पदचिह्नों से कैसे पहचाना जाए, जानवर को डराकर भगाए बिना उसके पास कैसे पहुँचा जाए।

आजकल का शिकार भी बड़ी निपुणता की अपेक्षा करता है। फिर भी, आज शिकारी बनना उस समय की अपेक्षा बहुत आसान है, चाहे इसलिए ही कि शिकारी को अब अपने हथियार नहीं बनाने पड़ते। पाषाण युग में शिकारी अपनी गदाएँ, चाकू और अपने दोहरे फलवाले भालों के लिए फल अपने-आप बनाया करते थे। इसमें पुराना शिकारी अपने कबीले के कमउम्र छोकरों को काफ़ी-कुछ सिखा सकता था।

हर कबीले में बूढ़े, अनुभवी स्त्री-पुरूष हुआ करते थे, जो अपने लम्बे जीवन में अर्जित ज्ञान और अनुभव को अपने कबीले के बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियों को प्रदान कर दिया करते थे।

लेकिन निपुणता और अनुभव दूसरे को कैसे सौंपा जाता है?

जो तुम जानते हो, उसे दूसरों को दिखा और समझाकर।

मनुष्य को इसके लिए भाषा की ज़रूरत हुई।

जानवर को अपने बच्चों को यह नहीं सिखाना पड़ता कि वे अपने ज़िन्दा औज़ारों - अपने पंजों और दाँतों - का उपयोग कैसे करें। यही कारण है कि पशुओं के लिए बोलना जानना उतना ज़रूरी नहीं है, जितना कि मानव के लिए।

प्रागैतिहासिक मानव के लिए भी बोलना ज़रूरी था। उसे उन कामों के लिए भाषा की आवश्यकता थी, जो औरों के साथ मिलकर किए जाने थे। लोगों को पुरानी पीढ़ी का अनुभव और निपुणताएँ नई पीढ़ी को देने के लिए शब्दों की ज़रूरत थी।

पाषाण युग के प्रागैतिहासिक लोग एक-दूसरे से कैसे बात किया करते थे?

अतीत की दूसरी यात्रा

चलो, एक बार फिर अतीत में चलें, लेकिन इस बार हम यह पहले से ज़्यादा आसानी से करने की कोशिश करेंगे।

दूर देशों को जाने के लिए कभी-कभी तुम्हारे लिए जहाज़ में बैठकर यात्रा करना ज़रूरी नहीं होता, तुम घर के बाहर निकले बिना भी ऐसा कर सकते हो। रेडियो की घुंडी को घुमाकर तुम अपने कमरे से पैर भी निकाले बिना देश के किसी भी भाग में पहुँच सकते हो। अगर तुम्हारे पास टेलीविज़न हो, तो तुम मीलों दूर के लोगों को केवल सुन ही नहीं, देख भी सकते हो। रेडियो और टेलीविज़न ने बड़ी दूरियों पर पार पाने में हमारी सहायता की है।

लेकिन उन लोगों को हम कैसे देख और सुन सकते हैं, जो हमसे बहुत-बहुत वर्षों की दूरी पर हैं?

क्या कोई ऐसा भी साधन है, जो हमें काल की यात्रा पर ले जा सके, जैसे रेडियो या टेलीविज़न हमें देशों की यात्रा पर ले जाते हैं?

हाँ, है सिनेमा। परदे पर हम सारी दुनिया को देख सकते हैं, और सिर्फ़ आज की ही दुनिया नहीं बल्कि कुछ पहले की दुनिया भी।

फिर भी, सिने कैमरा एक ऐसे जहाज़ की तरह है, जो हमें अतीत में अपने आविष्कार के साल से ज़्यादा पीछे नहीं ले जा सकता। और सिने कैमरा काफ़ी हाल की ईजाद है। पहली ''बोलती'' फ़िल्म 1927 में ही आई थी।

अगर हम काल में पीछे की तरफ की अपनी यात्रा जारी रखें, तो हमें एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ पर सवार होना पड़ेगा - भाप के जहाज़ से पालवाला जहाज़ और पालवाले जहाज़ से मामूली डोंगी।

अब हम मूक फ़िल्म का परदा ले लेते है। हम अतीत को देख सकते हैं, मगर अब उसे सुन नहीं सकते।

फिर ग्रामोफोन आता है। हम एक आवाज़ सुन सकते हैं, मगर यह नहीं देख सकते कि कौन बोल रहा है, यद्यपि उसकी आवाज़ में ज़िन्दा बोली की सभी धुनें हैं।

और फिर हमारी डोंगी हमें उन तटों के आगे नहीं ले जा सकती, जहाँ से वह खुद पानी में उतारी गई थी।

कोई फ़िल्म हमें वह नहीं दिखा सकती, जो 1895 के पहले हुआ था। और कोई ग्रामोफोन 1877 के पहले बोले गए शब्द फिर नहीं सुना सकता जिस साल वह पहले-पहल ईजाद किया गया था।

आवाज़ें क्षीण हो जाती हैं और पुस्तकों की नीरस, बराबर-बराबर छपी लाइनों में केवल अक्षरों के रूप में रह जाती हैं।

पुराने प्रारम्भिक फोटो में बस निश्चल मुस्कानें और निगाहें ही देखने को मिलती हैं। लेकिन 1838 के पहले कोई फोटो नहीं लिया गया था। जैसे-जैसे हम अपना सफ़र जारी रखते हैं, हमें अधिकाधिक अतीत के दूसरे सबूतों पर ही पूरी तरह आश्रित होना पड़ता है, यद्यपि वे कैमरा जैसे यथार्थ या वस्तुनिष्ठ नहीं हैं।

अतीत का कल्पना-चित्र बनाने के लिए हमें किताबों की उस गवाही की तुलना करनी होगी, जिसे कला-प्रदर्शनगृहों, अभिलेखागारों और पुस्तकालयों में सुरक्षित रखा गया है।

तब सैकड़ों साल यों ही गुज़र जाएँगे, जैसे सड़क पर मील के पत्थरों पर लिखी संख्याएँ निकल जाती हैं।

1440 के साल पर आकर हमें फिर बदली करनी पड़ेगी। इसके पहले छपी हुई किताबें नहीं थीं। छापे के साफ़ काले अक्षरों की जगह प्राचीन लिपिकार की आड़ी-तिरछी लिपि ले लेती है।

उसकी पर की कलम चर्मपत्र पर धीरे-धीरे चलती है और हम उसके पीछे-पीछे कदम-ब-कदम, अक्षर-अक्षर करके अतीत की तरफ चलते चले जाते हैं।

चर्मपत्र की पुस्तकों से पेपाइरस पर लिखे लेखों और उनसे मंदिरों की पत्थरों की दीवारों पर खुदे शिलालेखों पर जाते-जाते हमारी यात्रा हमें अधिकाधिक पीछे की तरफ लेती जाती है।

अतीत के लोगों से हमें मिलनेवाली लिखाई अधिकाधिक विचित्र और रहस्यमय होती जाती है।

आख़िर, लिखाई भी ग़ायब हो जाती है और अतीत की आवाज़ें खामोश हो जाती हैं।

अब क्या हो?

तब हम मिट्टी में मनुष्य के चिह्नों की तलाश करते हैं, हम बिसरे हुए समाधि-स्थलों को खोदते हैं, प्राचीन औज़ारों, पुराने आश्रयस्थलों के पत्थरों, कभी के ठंडे पड़े चूल्हों के कोयलों की जाँच करते हैं।

अतीत के ये सभी अवशेष हमें बताते हैं कि आदमी कैसे रहता और काम करता था।

लेकिन क्या वे हमें यह भी बता सकते हैं कि मनुष्य कैसे बोलता और सोचता था?

(अगले अंक में जारी)

'मनुष्य महाबली कैसे बना'! से साभार

प्रस्तुति : राजेश उत्साही

माथा पच्ची हल : मार्च, 94 अंक के

1. संख्या है शून्य।

2.

2	+	7	=9
+		+	
6	+	5	=11
=8		=12	

3. दोनों स्थितियों में वज़न समान रहेगा।

4. इस सवाल के छपने में एक ग़लती हो गई। अज्ञात संख्या का दहाई अंक इकाई अंक से 4 नहीं बल्कि 3 कम है। और ऐसी एक अज्ञात संख्या 25 है। और भी हो सकती हैं तुम पता करो।

6. मीरा को राना का दिया उपहार मिला ।

7. 1+1=2

1+2=3

2+3=5

3+5=8

5+8=13

8+13=21

13+21=34

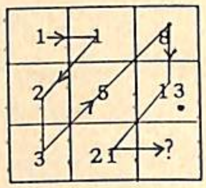

वर्ग पहेली 31 और 32 के हल मई, 94 के अंक में प्रकाशित किए जाएंगे।

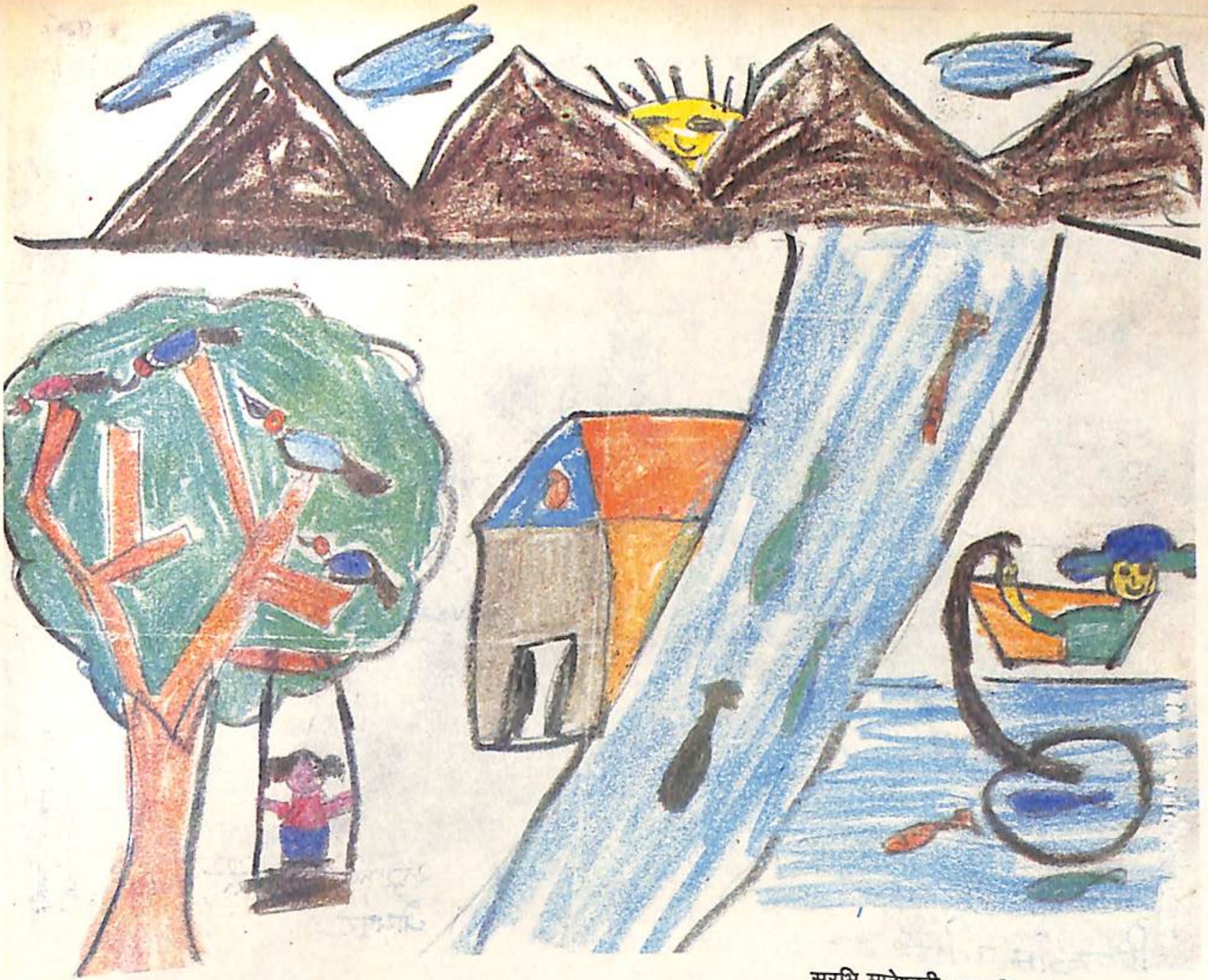

सुरभि माहेश्वरी, आठवीं, जोधपुर, राजस्थान

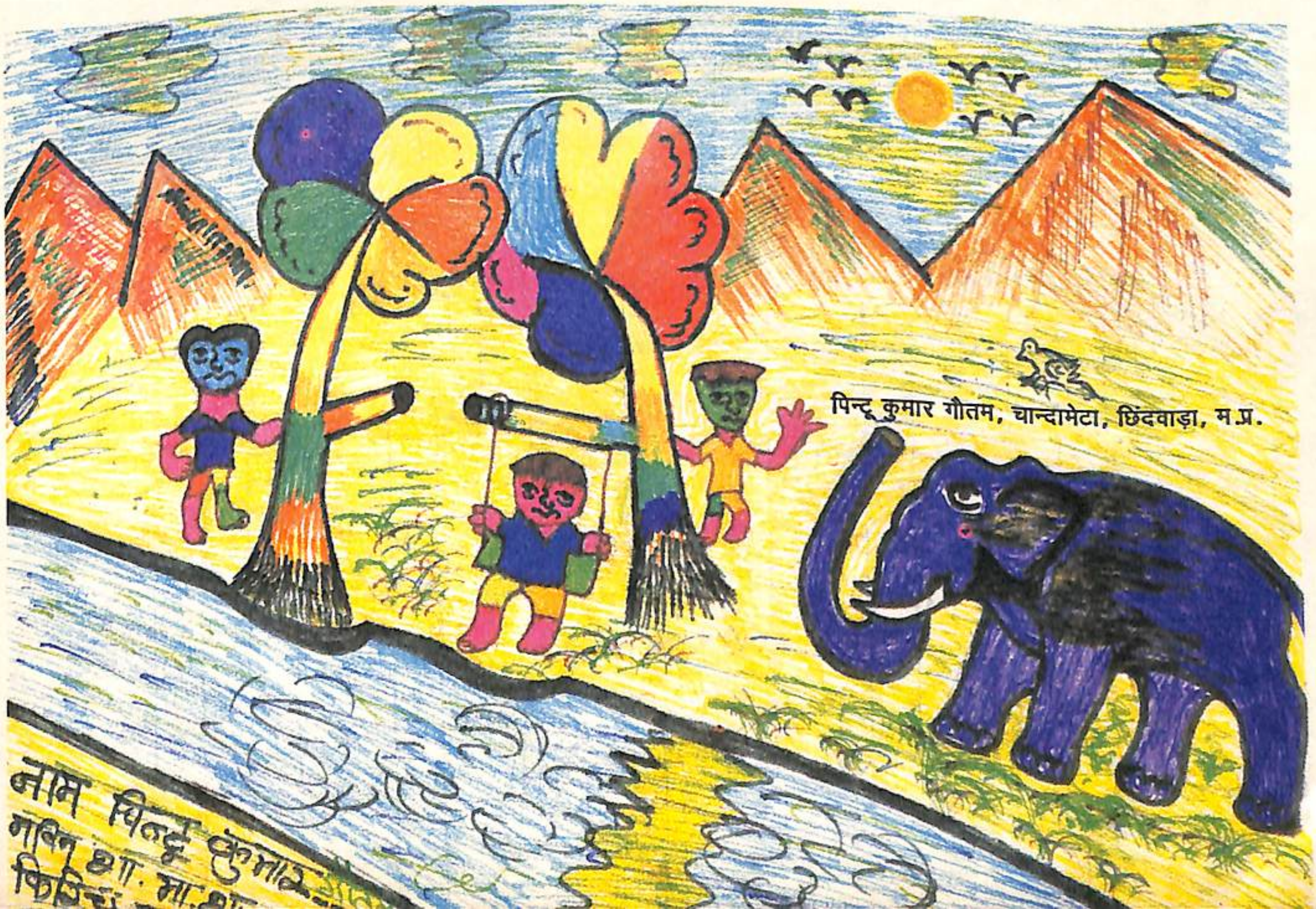

पिन्टू कुमार गौतम, चान्दामेटा, छिंदवाड़ा, म.प्र.

चकमक पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/94

नेहा शर्मा, छह वर्ष, कोटा, राजस्थान

रेक्स डी रोज़ारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल-462016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना